आत्म-प्रमोद ।

जो निश्चय परमातमा, वोही शुद्ध सँभाल ।
प्रगटै आत्मप्रमोद रस, सहजहिं होय निहाल ॥

नमः परमात्मने ।

आत्म-प्रमोद ।

लेखक और प्रकाशकः—

ब्रह्मचारी नंदलाल महाराज ।

संशोधकः—

श्रीयुत बिहारीलाल कठनेरा ।

बम्बई ।

प्रथमावृत्ति २००० प्रति ।

बैशाख, वीर सम्वत् २४५४ ।

मई सन् १९२८ ।

मूल्य—

सादी ॥।) सजिल्द १)

प्रकाशकः—
ब्रह्मचारी नंदलाल महाराज,
कारंजा (अकोला)

आत्म-प्रमोद मिलनेका पताः—
मोतीलालसावजी ओंकारसावजी चवरे,
पो० कारंजा (आकोला)

मुद्रकः—
प्रथम भाग तथा टाइटल आदि
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ३१८ ए, ठाकुरद्वार बम्बई २.
द्वितीय भाग
विनायक बाळकृष्ण परांजपे,
नेटिव ओपीनियन प्रेस, आंग्रेवाडी, गिरगाँव-बम्बई ।

आम त्वश्रयम य जभूत मन्य य यनन्न म न्त न न्न मुय य र ताग

स्वस्तिश्री १०८ श्रीवीरसेनस्वामी

(सिंहासन कारंजा)

Lak hm A t B n bay 8

ॐ

समर्पण।

श्रीमदखिलार्थप्रकाशक-श्रुतामृतमहोदधि मनोमंथनदंड-मथनादुदिताध्यात्मविद्या-कोदंडदंड-मंडित-दोर्दंड-दंडिता-नादिमोहमहाभट स्वस्तिश्री १०८ श्रीवीरसेनस्वामी सिंहासन कारंजा।

श्रीगुरुवर!

जैनसमाजमें आप अध्यात्मशास्त्रके मर्मज्ञ हैं, तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्म-स्वरूपकी व्याख्या करना, और अति सुलभ आगमोक्त रीतिसे समझानेकी आपमें अद्भुत शक्ति है, यह तो प्रसिद्ध ही है। परंतु आश्चर्य तो यह है, कि आपका लौकिक व्यवहार ही पारमार्थिक आत्मानुभवके प्रत्यक्ष करानेको एक अद्वितीय दृष्टांतरूपमें परिणत हो रहा है। आप अपने पास रहनेवाले मुमुक्षुजनोंको अपने लौकिक व्यवहारका ही दृष्टांत देकर अचिंत्य आत्मस्वरूपको सुलभ रीतिसे बोध करानेके लिये सदा उत्साहित रहते हैं। इसलिये आपके गुण स्वभावसे ही यत्र-तत्र प्रचार होनेसे, आपके पास जैन तथा जैनेतर विद्वज्जन आकर अपनी अपनी शंकाओंका समाधान कर लेते हैं। हरएक प्रश्नका आप शास्त्रोक्त, प्रचुर युक्तियोंके द्वारा, जातीय पक्षपातरहित, अपूर्व समाधान करते हैं। जिसको सुनकर जैनोंकी तो बात ही क्या, इतर विद्वज्जन आपका भूयोभूयो गुणानुवाद करते, आपकी सूक्ष्मदर्शिताकी, प्रशंसा करनेको प्रवृत्त हो जाते हैं। आज जैन समाजमें, घर घरमें जो अध्यात्मरस फैल रहा है, सो यह भी आपकी ही महा उदारताका फल है। कारण सर्व प्रथम आपने ही 'श्रीसमयप्राभृत आत्म-ख्याति' सिद्धांत शास्त्रको मुद्रणालयमें मुद्रित करवाकर प्रकाशित किया था। जिससे घर घरमें

अध्यात्म-चर्चा करनेका आज सुअवसर मिल रहा है। किन्तु इस कलिकालमें कृतज्ञताका प्रभाव कम होनेसे, समाज गुणानुवाद करनेको असमर्थ होती हुई रूढ़िके वशीभूत हो रही है, यह खेदकी बात है। परंतु आपके उपदेशका धारावाही प्रवाह चल ही रहा है। स्वानुभूति प्रत्यक्ष होनेसे आप परीक्षक हैं, इस लिये आप अपने चित्तमें क्षोभ व परिवर्तन नहीं करते हैं। आप ब्रह्मस्वरूपके विचारमें ही तन्मय रहते हैं, तथा अलौकिक, स्वाभाविक भावमें सदा केलि करते हैं। जो पारमार्थिक महान् वैराग्य भाव आपके अंतःकरणमें छा रहा है, उसे अज्ञानी जन देखनेको असमर्थ हैं।

श्रीपूज्यपाद !

आपके प्रसादसे ही आज आत्मरसगर्भित यह "आत्म-प्रमोद" लिखकर आपको अर्पण करनेको मैं सादर हुआ हूँ।

श्रीगुरुवर !

आपके वचनोंकी प्रतीतियुक्त पूज्य भक्तिका ही यह साक्षात् फल है, इसलिये मैं इस "आत्म-प्रमोद" को आपके ही पवित्र कर-कमलोंमें सादर-सप्रेम सविनय समर्पित करता हूँ।

पूज्यवर !

इस बालकृतिद्वारा आपका चित्त प्रसन्न करना ही मेरा एक मात्र उद्देश्य है।

प्रेमाभिलाषी आपका प्रिय शिष्य–

ब्रह्मचारी नंदलाल।

आत्म-प्रमोद

ब्रह्मचारी नंदलाल महाराज।

I al lmi Art Bombay S

परिचय।

—:०:—

श्रीमान् पूज्य ब्रह्मचारी नंदलालजीका जैनसमाजको बहुत कुछ थोड़ा ही परिचय है; लेकिन '**आत्म-प्रमोद**' के साथ और कुछ सामान्य परिचय करा देना मैं नितान्त आवश्यक समझता हूँ।

आप कलकत्तेके सन्निकट उत्तरपाड़ानिवासी अच्छे खानदानी **गोलसिंगारे सिंगई** जातिके गृहस्थ थे, लेकिन काललब्धिका निमित्त पाकर संसारसे उदासीन हो गये, और **ब्रह्मचारी** पद धारण करके, **सच्ची शान्ति** (आत्मीय शान्ति) के लिये, तीर्थस्थानादिमें इधर उधर घूमते, व शास्त्र-स्वाध्याय करते हुए बहुत देशाटन किया, मगर कहीं भी शान्ति-लाभ नहीं हुआ।

किसी महोदयने कहा कि **कारंजामें** सुप्रसिद्ध आत्मानुभवी **स्वस्तिश्री १०८ श्रीवीरसेनस्वामी** हैं, उनके पाससे आप इच्छित शान्ति-लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकारके जिकर होनेकी देर ही थी, कि आप झटसे कारंजा पधारे। **तेरहपंथी** आम्नायी होकरके भी आपने बड़ी नम्रतापूर्वक पूज्य भावसे स्वामीजीके **चरणोंमें प्रणिपात** किया और कहा कि मैं आत्मानुभूतिका बहुत इच्छुक हूँ, घूमते घूमते परेशान हो गया हूँ, आज तक सच्चा गुरु मुझे कोई नहीं मिला, इसलिये हे कृपानिधि, आप कृपा कीजिये। तब स्वामीजीने बहुत कुछ इन्कार किया कि इसमें तुम्हारी बुद्धि प्रवेश नहीं करेगी। ऐसा कहनेपर भी **ब्रह्मचारी** निराश नहीं हुए। जैसे जैसे स्वामीजी इन्कार करते थे, वैसे वैसे आप भी अपना आग्रह कायम रखते

थे। आखिर आपको स्वामीजीके पास इस प्रकारका पन्द्रह दिन आग्रह करना पड़ा। हर्षकी बात है, आपने **विजय** पाई, अर्थात् स्वामीजीकी कृपादृष्टि हुई।

मा धाव सुखहेतोस्त्वं धावता नु कुतः सुखम्।
सुखरूपे निजेरूपे, सुखं तिष्ठ सुखी भव॥

तब पूज्यवर स्वामीजीने कहा, बाबारे; इधर उधर घूमनेसे व केवल शास्त्राभ्याससे व बाहरी बातें जाननेसे सच्ची आत्मिक शान्ति नहीं प्राप्त होती है। शान्तिके लिये शान्तस्वरूपी स्वाभात्रिक अन्तर्दृष्टि खोलनी चाहिये। इसलिये अध्यात्म विषयका हमारे कहे अनुसार विचार करो, व मनन करो, व उसीकी चर्चा करो, यदि तुम्हारी काल लब्धि सन्निकट होगी, तो सहज ही अन्तर्दृष्टि खुल जायगी, अभी कुछ नहीं कह सकते हैं। तब ब्रह्मचारीजी **गुरु-आदेशानुसार** अध्यात्म विषयका विचार करनेको प्रवृत्त हुए।

आपने स्वामीजीके पास तीन चार चातुर्मास किये और अध्यात्म विषयका बहुत ही सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया। आपकी अध्यात्म-शास्त्रमें जैसी धुन लगती थी, वैसी अन्यत्र देखनेमें नहीं आई। मेरे **परमपूज्य गुरु स्वानंदसम्राट्जीके** कृपाप्रसादका यह '**आत्म-प्रमोद**' फल है।

अब प्रिय पाठकोंसे मेरी यही अन्तिम प्रार्थना है कि मेरे पूज्य गुरु बंधु ब्रह्मचारी नंदलालजीने बड़े परिश्रमसे शान्तस्वरूपी **गुरु प्रसाद** प्राप्त किया है, उसको सेवन करके सच्चा शान्तिमय आनन्द लूटें। विनीत—

—शहा अमीचंद सखाराम मोहोलकर।

धन्यवाद ।

निम्न उदार सज्जनोंने 'आत्म-प्रमोद' के प्रकाशनमें उदारतापूर्वक द्रव्य-दान देकर अपना धर्म-प्रेम दिखाया है, उन महाशयोंको शतशः धन्यवाद देते हैं। अन्य भाई भी इनका अनुकरण करके अन्य अलभ्य ग्रंथोंके प्रकाशनमें द्रव्य-दान देकर अपने धनको सफल करेंगे।

२०१) धर्ममूर्ति-गोपालसावजी अम्बादाससावजी चवरे
कारंजा (अकोला)

२०१) ,, मोतीलालसावजी ओंकारसावजी चवरे
कारंजा (अकोला)

१०१) ,, गंगासावजी जानासावजी धाकड़,
नन्दाना (अकोला)

१००) ,, माणिकसावजी पासूसावजी बघैरवाल
देवलगांवराजा (बुलढाना)

५०) ,, गोविन्दसावजी माणिकसावजी अग्रवाल
देवलगांवराजा (बुलढाना)

५०) ,, यंकासावजी सोनासावजी अग्रवाल,
देवलगांवराजा (बुलढाना)

—प्रकाशक

आभार-प्रदर्शन ।

श्रीयुत बाबू बिहारीलालजी कठनेरा, मालिक—जैन-साहित्य-प्रसारक कार्यालयने अपना अमूल्य समय खर्च करके इसका संशोधन करके धर्म-प्रेमका परिचय दिया है। यदि आप इसका संशोधन न करते, तो अवश्य ही बहुतसी गल्तियाँ रह जातीं और यह इतनी जल्दी सुन्दरतापूर्वक प्रकाशित भी न होता। उनकी इस उदारताके लिये हम धन्यवाद देते हैं।

—प्रकाशक।

वर्णानुक्रमणिका।

प्रथम–भाग।

पद संख्या		पृष्ठ संख्या
४३	भाई ! आत्मप्रभा चित छायो।	२३
५२	भाई ! आतम अनुभव ल्यावो।	२८
५४	भाई ! कब हूं न निज घर आयो।	२९
६७	भाई ! आतम ज्ञान विचारो रे।	३५
६८	भाई ! आतमको पहिचानो रे।	३६
६९	भाई ! क्यों है रहा दिवाना रे।	३६
	म	
६	मोहि ब्रह्मरूप मन भाय रे।	४
७	मैं अनुभवरूपी चंदा, मैं सिद्धस्वरूपी बंदा।	४
२२	मन तू खोजत नाहीं, समय फेर नहिं आता।	१२
३९	मानुष जनम गमायो।	३९
७१	मेरो नाम सिद्ध भगवान।	३८
२८	म्हैंतो मेरी आज महिमा जानी।	१५
२९	म्हैंतो मैंही आप सरधा ठानी।	१५
	र	
८	रे मन ! परिणति खेल विचार।	५
३४	रे मन ! ज्ञाता माहिं लुभाना, जिन निज निजको निज जाना।	१८
४१	रे जिय ! क्यों तू छोड़े विवेक।	२२
४५	रे मन ! उलटी चाल चलै।	२४
५५	रे जिय ! जनम लेउ संभार।	३०
५७	रे जिय ! मगन रहु इक तान।	३१
५८	रे जिय ! मगन है आराध।	३१
६५	रे ! तू आतम-गुण नहिं चीना।	३५
	व	
११	वीतराग महिमा आतमकी, त्रिभुवन छाय रही जन जनमें।	६
६१	वे कोइ निपट अनारी, देखा आतमराम।	३३

द्वितीय भाग ।

श्री परमात्मने नमः ।

ब्रह्मचारी नंदलाल महाराजकृत—

आत्म-प्रमोद ।

प्रथम भाग—पदोंका गुच्छा ।

१ राग-आसावरी ।

भाई ! ज्ञान-बिना दुख पायारे ॥ टेक ॥ चौरासी लख योनि माहिं सब, भटक भटक भरमायारे ॥ भाई० ॥ १ ॥ दान दियो तप घोर कियो फिर, नवग्रैविक सुख पायारे । तहँतें चयकर भ्रमत भ्रमत फिर काल अनादि गमायारे ॥ भाई० ॥ २ ॥ ज्ञानमयी निज पद नहिं जानो, थिरता सुख नहिं आयारे । पर पद माहिं लुब्ध अति होकर, रंक भयो बिललायारे ॥ भाई० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म जे सुख चाहत हो, देख अमर निज काया रे । ज्ञानरूप परकाश महातम, चेतन अंक बतायारे ॥ भाई० ॥ ४ ॥

२ राग–आसावरी ।

भाई ! आतम अनुभव करनारे ॥ टेक ॥ जिन विषय-नसे दुख बहु पावै, क्यों ताहैं अपनानारे ॥ भाई० ॥ पांचों इंद्री तीन योग है, तामें हित अति मानारे । सूक्षम भाव बहे घट-अंतर, ज्ञायक पद निज भानारे ॥ भाई० ॥ २ ॥ भेदज्ञान सामर्थ पलकमें, देख अचल शिव-थानारे । शाश्वत गुण नित ऋद्धि सिद्धिमय केवलपद प्रगटानारे ॥ भाई० ॥ ३ ॥ ऊर्द्ध सुभावी आप विकाशी, देख नित्य चित ल्यानारे । नंद ब्रह्म घट चाह नाहिं कछु, सागर बूंद समानारे ॥ भाई० ॥ ४ ॥

---

३ राग–आसावरी ।

जान ! जान ! अबरे ! हे नर आतमज्ञानी ॥ टेक ॥ राग द्वेष पुद्गलकी परणति, तू तो सिद्ध समानी ॥ जान० ॥ १ ॥ चार गती पुद्गलकी रचना, तातें कही बिरानी । सिद्धस्वरूपी जगतविलोकी, विरलेके मन आनी ॥ जान० ॥ २ ॥ आपरूप आपहि परमाने, गुरुशिर्ष[1] कथा कहानी । जनम मरन किसका है भाई, कीच रहित है पानी ॥ जान० ॥ ३ ॥ सार वस्तु तिहुँ काल जगतमें, नहिं क्रोधी नहिं मानी । नंद ब्रह्म घटमाहिं विलोकैं, सिद्धरूप शिवरानी ॥ जान० ॥ ४ ॥

---

१ शिष्य ।

४ राग—आसावरी।

जान लियो मैं जान लियो, आपा प्रभु मैं जान लियो ॥ टेक ॥ परमेश्वरमें सेवकको भ्रम, एक छनिक्रमें दूर कियो ॥ जान० ॥ १ ॥ परमेश्वरकी मूरति मैंही, ज्ञानसिंधुमय पेख लियो। मरमी होय परख सो जानै, औरनको है सुन्न हियो ॥ जान० ॥ २ ॥ याहि जान मुनि ज्ञान ध्यान-बल, छिनमें शिवपद सिद्ध कियो। अरहत् सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, एक आतम उपदेश दियो ॥ जान० ॥ ३ ॥ जो निगोदमें सो अपनेमें, शिवथानक सोई लखियो ॥ नंद ब्रह्म यह रंच फेर नहिं, बुधजन योग्य जान गहियो ॥ जान० ॥ ४ ॥

---

५ राग—सारंग।

जिय! ऐसा दिन कब आय है ॥ टेक ॥ सकल विभाव अभाव-रूप है, चित्त-विकल मिट जाय है ॥ जिय० ॥१॥ परमातममें निज-आतममें, भेदाभेद विलाय है। औरोंकी तो चले कहां फिर, भेदविज्ञान पलाय है ॥ जिय० ॥२॥ आप आपको आपा जानन, यह विवहार लजाय है। नय परमान निछेप कही ये, इनको औसर जाय है ॥ जिय० ॥३॥ दरशन ज्ञान भेद आतमके, अनुभव माहिं पलाय हैं। नंद ब्रह्म चेतनमय पदमें, नाहिं पुद्गल गुण भाय हैं ॥ जिय० ॥ ४ ॥

---

६ राग–सारंग ।

मोहि ब्रह्मरूप मन भायरे ॥ टेक ॥ ज्ञान-समुद्र देख जगमाहीं, चित्त-कमल मुलटायरे ॥ मोहि० ॥ १ ॥ रागादिक पुद्गलकी परिणति, पुद्गलसे उपजायरे। अष्ट कर्म गति है नित न्यारी, चेतनमय पद पायरे॥ मोहि० ॥२॥ पुद्गल धर्म अधर्म कालकी, परिणति भिन्न बतायरे। चेतनमय भगवान बिराजै, सिद्धरूप चित छायरे ॥ मोहि० ॥ ३ ॥ सकल ग्रंथ दीपक सम गाये, निज पद चेत लखायरे। नंद ब्रह्म निज पद निजमाहीं, परमें परही थायरे ॥ मोहि० ॥ ४ ॥

---

७ राग–ख्याल ।

मैं अनुभवरूपी चंदा, मैं सिद्धस्वरूपी बंदा ॥ टेक ॥ सम्यक् त्रयी स्वभाव बिराजै, देख अभेद सुछंदा॥ मैं०॥१॥ छहों दरब नव तत्व देखिये, आतमको ही झंदा¹। ज्ञायक रसमें विरस भये सब, राग द्वेष नहिं फंदा ॥ मैं० ॥ दरबकरम नोकरम देख अब, भावकरम दुख धंदा। चेतन-वंशी चेत विलोकै भावकरम कहां अंधा॥ मैं० ॥३॥ नंद ब्रह्म चित आन थान नहिं, कहा कहूं मतिमंदा। जान बूझ इक आतम स्वादो दूर होय भवकंदा॥ मैं० ॥४॥

---

१ झंडा ।

८ राग–रामकेली।

रे मन! परिणति खेल विचार ॥ टेक ॥ भेदज्ञान सामर्थ पलकमें, छूट जाय संसार ॥ रे मन० ॥ १ ॥ अंतर बाहिर अर परमातम, तीन भेद परिहार। ज्ञायकमय इक, भेदरहित नित, देख शुद्ध आकार ॥ रे मन० ॥ २ ॥ पंच भेद जिम मुख्य ज्ञानके, और ग्रंथ विस्तार। ज्यों अग्नी पर संगति पाकर, नाम अनेक प्रकार ॥ रे मन० ॥३॥ वचनरूप नहिं देख छनिकमें, काया छोड़ गँवार। नंद ब्रह्म निज परणति परखै, सहज होय भव पार ॥ रे मन० ॥ ४ ॥

९ ठुमरी।

बुधजन पक्षपात तज देखो, आतमरूप बिराजै घटमें ॥ टेक ॥ त्रिविधरूप परिणति जीवनकी, ग्रंथनमें इस रूप बतावें। यह व्यवहार पराश्रित जानो, पर संबंध जिनेंद्र सुनावें ॥ बुध० ॥ १ ॥ अशुभ भावसे नरक वास है, शुभ भावोंसे स्वर्ग भ्रमावें। शुद्ध भाव संबंध रहित हैं, तातैं निरविकलप प्रभु गावें ॥ बुध० ॥ २ ॥ पर कारण छूटैं मोहादिक, दर्शन त्रय सम्यक् पद पावें। ज्ञायक रसमें बिरस भए सब, आप आप निज पद उछलावें ॥ बुध० ॥ ३ ॥ दोय भाव जग-भ्रमण हेतु हैं, जो निज पदमें नाहिं सियाने। नंद ब्रह्म स्वयभाव प्रकाशै, शुद्धभाव ही सिद्ध दिखावें ॥ बुध० ॥ ४ ॥

१० ठुमरी ।

आत्म अबाध निरंतर चिंतें, संत महात्म देखहु प्राणी ॥ टेक ॥ रागादिक जड़ पुद्गल नाचें, देखनहारा मैं नित जानी । स्फटिक माहिं ज्यों वरण दिसत है, तद्गत नाहीं स्वच्छ दिखानी ॥ आत्म० ॥ १ ॥ वरणादिक विकार मम नाहीं, मेरो है चैतन्य निशानी । है अनादि इक क्षेत्रहि माहीं, तदपि भिन्न लक्षण पहचानी ॥ आत्म० ॥ २ ॥ मैं निज ज्ञायक रस सरवांगी, लवण क्षारवत् लीला जानी । ज्ञायक रस इक स्वादन आयो, ता कारण परमें हित मानी ॥ आत्म ०॥३॥ नंद ब्रह्म निरलेप विकाशी, मूरत है मम सिद्ध समानी । नित अकलंक अनंत गुणातम, निर्मल पंक-बिना ज्यों पानी ॥ आत्म० ॥ ४ ॥

११ ठुमरी ।

वीतराग महिमा आतमकी, त्रिभुवन छाय रही जन जनमें ॥ टेक ॥ मन बच काय योग इंद्रिय अरु, इनमें व्यापक है तन तनमें । मेघ-पटल जिम दूर होत ही, भासै चंद्रप्रभा इक छिनमें ॥ वीतराग० ॥ १ ॥ यदपि ज्ञेय इक ज्ञायक परिणति, तदपि ज्ञेय गुण नहिं ज्ञायकमें । परिणति नेत्र फिरै सब माहीं, मिलत नाहिं देखो निजनिजमें ॥ वीत० ॥ २ ॥ उपयुग आप आपको स्वामी, निश्चल भाव देख निजनिजमें । नहीं स्वभाव बाह्य निकसनको, लवण क्षार सम इस जीवनमें ॥ वीत० ॥ ३ ॥ अब निज रूप यथारथ पायो, इच्छा विकलप नहिं निज धनमें । नंद ब्रह्म अमृत रस पाकर, क्यों भूलें फिर पर विषयनमें ॥वीत०॥४॥

१२ ठुमरी।

सत्य स्वरूप देख जिन मूरति, छाय रही सम्यक्-दृग-धनमें ॥ टेक ॥ दर्शन ज्ञान चरण-गुण-माहीं, है अनादि पर परिणति इनमें। सम्यक् गुणके प्रगट होत ही, दूर होय पर परिणति छिनमें ॥ सत्य० ॥ १॥ जिनकी मूरति है निज मूरति, देख लेउ छिन इस ही जंनमें। नाशा अग्र देय निज गुणमें, दई दिखाय साफ इस तनमें ॥ सत्य० ॥२॥ ज्ञायक आप आपको स्वामी, सूक्षम ज्योति जगै वचननमें। प्रगट सिद्ध शुद्धातम पद यह, देख लेउ इम तन-मंदिरमें ॥ सत्य० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म जिनमूरति वंदत, भेद भगी, प्रगटत ही छिनमें। जैसो मुख देखो तैसो ही, थिर जब नीर होय भाजनमें ॥ सत्य० ॥ ४ ॥

१३ राग-ईमन।

धन धन है! महिमा इस जनकी ॥ टेक ॥ जिनवाणीके सुनत सहजही, भई लब्धि निज आतमकी ॥ धन० ॥१॥ रागादिक जड़ भिन्न दिखाने, भई त्याग तब पर गुणकी। चिन्मूरति आतम जगव्यापी, जगी ज्योति घट अंतरकी ॥ धन० ॥ २ ॥ पुण्यपाप दुख कारण जाने, पगी बुद्धि जब शमदमकी। चित्त निराकुल निज स्वभाव लख, परम पियूष धार रसकी ॥ धन० ॥ ३ ॥ ज्ञानानंद ज्ञानगुण माहीं, उठत लहर निज आतमकी। नंद ब्रह्म शिवपद निज पदमें, यहां पहुंच नाहीं जमकी ॥ धन० ॥ ४ ॥

---

१ जन्म।

१४ राग–ईमन ।

जाग ! जाग ! अब आप विचार, छूट जाय संसार ॥ ॥ टेक ॥ चेतन पद सरवांग एकरस, ज्ञायक ज्योति अपार। गुण अनंत भूषण जग व्यापक, देखो आप सम्हार ॥ जाग० ॥१॥ बुद्धि अबुद्धि पूर्व रागादिक, है पुद्गलके लार। यह विभाव परिणति मम नाहीं, स्वानुभूति है सार ॥ जाग० ॥२॥ कर्म शुभाशुभ उदय बंधमें, है उदास व्योपार। जगमग दीपक सम्यक् त्रय गुण, देख लेउ इक बार ॥ जाग० ॥ ३ ॥ ज्ञानकोष सब दोषरहित है, अलख अचिंत अबाध। नंद ब्रह्म घटमंदिर बस रहु, जनम मरनके पार ॥ जाग० ॥ ४ ॥

१५ दादरा ।

धन ते प्राणी जिनने पायो आतमज्ञान ॥ टेक ॥ रहित सप्त भय आत्मभावसे, चित संशय नहिं थान। द्रव्यकर्म नोकर्म-रहित अर, भावकर्महू आन ॥ धन ते० ॥ १ ॥ सर्व भावमें अंधभाव तज, करत आत्मरस पान। धार वही चित स्वात्म भावकी, पायो केवलखान ॥ धन ते० ॥२॥ निजहि लोक निजलोकविकाशी, ज्ञान ध्यान अमलान। रतनत्रय–महिमा परकाशे, ज्ञानलब्धि बलवान ॥ धन ते० ॥३॥ चेतन मय अनुभव रस चाखत, निश्चयनय परमान। नंद ब्रह्म स्वच्छंद ज्ञानमय, सम्यक् गुण परधान ॥ धन० ॥ ४ ॥

१ अज्ञानभाव ।

१६ राग—दादरा ।

आपन ही भ्रमतें भ्रमत रहै ॥ टेक ॥ अंग संग अनुभव निज तजकें, जनम मरन दुख भार बहै । मृग तृष्णातुर होय धाय जिम, मांडलि माहीं दुःख सहै ॥ आपन० ॥१॥ नामकर्म संबंध पाय नर, नरकादिक परजाय गहै । आपन मान धार चित लीनो, भव अनंत बहु काल बहै ॥ आपन० ॥ २ ॥ कर्त्ता होय गांठ दिढ़ बांधै, परको साक्षी क्यों न रहै । व्याप्य सु व्यापक भाव नाहिं है, तद्यपि कर्त्ता बनत रहै ॥ आपन० ॥३॥ जो भ्रमनींद खोल इस जनमें, निजको निजहि सम्हारग हैं । नंद ब्रह्म यह शुद्ध भाव ही, सिद्धरूप परकाश रहै ॥ आपन० ॥ ४ ॥

---

१७ राग—ख्याल ।

और सब छोड़ो बातें गहले आतमज्ञान ॥ टेक ॥ इस जगमाहीं कोइ न तेरा, क्यों है रहो अजान ॥ और० ॥१॥ स्वारथ सांचो करो जतनसे, धर विवेक चित आन । जैसे हंस नीरको तजकर, करत क्षीर नित पान ॥ और० ॥२॥ पाप पुण्य सुख दुख मय परिणति, युक्त ज्ञान है म्लान । संग त्याग परिणति देखतही, आप भास अमलान॥और०॥३॥ जिस उर अंतर बहै निरंतर, ज्ञान भेदविज्ञान । तिनही सिद्ध अवस्था पाई, नंद ब्रह्म परमान ॥ और० ॥ ४ ॥

---

१८ राग—ख्याल कान्हड़ी।

अजी अब कीजिये निज स्थलको याद ॥ टेक ॥ जानलो जानलो गुण ज्ञान धनको, होय आतम स्वाद ॥ अजी० ॥ १ ॥ अबकी भूले थाह नहीं है, हितमें होय विषाद। नर्क वेदना नरकहिं माहीं, नाहीं आतम स्वाद ॥ अजी० ॥ २ ॥ नर परजाय पाय अति दुर्लभ, त्यागहु सकल प्रमाद। स्वय पर भेदज्ञान चित धरकें, मेटो कर्मविवाद ॥ अजी० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म सत्गुरु शिक्षा बिन, भटको काल अनादि। तूही कर्त्ता है फल भोगत, नहिं सम्यक् गुण याद ॥ अजी० ॥ ४ ॥

---

१९ राग—ख्याल कान्हड़ी।

अजी अब देखिये जिनधर्म प्रभात ॥ टेक ॥ जागिये साधिये स्व-ज्ञानहीको, उठहु अब तुम भ्रात ॥ अजी० ॥ १ ॥ भ्रम-भंवर संगति माहिं रहकर, लखत नहिं निज गात। सम्यक्-रतन निरभेद एकहि, पेख ज्योति जगात ॥ अजी० ॥ २ ॥ आतम चतुष्टय गुणन माहीं, गुण अनंत विख्यात। ज्ञायक विकाशी सर्व गुणमें, गहो एकहि जात ॥ अजी० ॥ ३ ॥ निज सिद्ध गुणही सिद्धजाती, सिद्धमइ उछलात। अनुभव करो निज रूप ध्यावो, नंद एकहि बात ॥ अजी० ॥ ४ ॥

---

२० राग-काफी-कान्हड़ी।

अब जागो प्राणी, फेर हाथ नहिं आता। सत्गुरु बोलें संशय खोलें, सत्य भाव दरसाता॥ टेक॥ ज्ञायक चेतन रूप तुम्हारा, और भरमकी बाता॥ अब०॥ १॥ पुद्गल जड़ आतम चेतनमय, आप आपमें नाता। रागादिक पुद्गलके साथी, तू निरमय इक ज्ञाता॥ अब०॥ २॥ तूही दृष्टा तूही ज्ञाता, तूही अनुभव आता। शब्द फरस रस गंध वर्ण यह, पुद्गल गुण विख्याता॥ अब०॥ ३॥ जिनने चीना चित घर लीना, हुए सुदिढ़ निज भाता। नंद ब्रह्म अनुभव ते लूटें, जीवनमुक्त कहाता॥अब०॥४॥

---

२१ राग-काफी-कान्हड़ी।

अब देखो प्रानी, घटमें देव बिराजै। हाड़ मांसके मंदिर माहीं, अधर कमलपर राजै॥ टेक॥ भासत आप-आप निज परमें, केवलमय गुण साजै॥ अब०॥ १॥ अविकारी अति निर्मल ज्योती, शुद्ध सिद्धमय छाजै। संत जान निजपद पहिचानैं, जोग जाग फिर लाजै॥ अब०॥२॥ पर संयोग मलिन छबि भासत, निजगुण मूल न त्याजै। जैसे दर्पण वरण संगतें, अरुण श्याममय साजै॥ अब०॥३॥ शब्दातीत भास सोऽहं मैं, शब्दरूपमें गाजै। नंद ब्रह्म अति निपट निकट है, गुरु बिन भरम न भाजै॥ अब०॥ ४॥

---

२२ राग–कलिंगड़ा ।

मन तू खोजत नाहीं, समय फेर नहिं आता ।। टेक ।। दरशन बोधमई आतम निज, देख अपूरव ज्ञाता । पर-द्रव्यनको नहिं अपनावें, रागादिक नहिं आता ।। मन० ।। १ ।। शुभ अर अशुभ बंध पद्धतिमें, स्वाद एकरस आता । ज्ञान विरागी शक्ति आपकी, ज्योंका त्यों दरसाता ।। मन० ।। २ ।। उपशमादि कर्मोंकी गति यह, तू चेतन विख्याता । पर योगनतें भास मलिनता, घर विवेक नहिं नाता ।। मन० ।। ३ ।। एकाकार एकजाती लख, सोऽहं सोऽहं भाता । नंद ब्रह्म इम जिन वंदन कर, फिर नहिं जगमें आता ।। मन० ।। ४ ।।

२३ राग–कलिंगड़ा ।

सम आराम विहारी, होय जगतमें रहना ।। टेक ।। रागादिक पर संपति सेती, भूल नहीं हित करना । स्वानु-भूति रमणीकों लेकर, जाग्रत बाग विचरना ।। सम० ।।१।। बाहिज दृष्टि खेंच अंतरमें, उलट पलट आदरना । चाह दाह फिर अपने आपहि, पंथ गहै नहिं थाना।।सम०।।२।। विभ्रमतिमिर हरै निज दृगकी, ज्ञान लेप नित करना । पटल दूर है अटल देख तब, गगन ज्ञान रथ चढ़ना ।। सम० ।। ३ ।। नंद ब्रह्म लघुमति क्या वरनैं, देख सिद्ध रस चखना । ज्ञान सुलोचन शुद्ध भाव धन, बचन नाहिं क्या कहना ।। सम० ।। ४ ।।

२४ राग–धमाल सारंग।

हूं तो अब नहिं जगमें आऊं, मेरो निज पद निजहि दिखानो ॥ टेक ॥ सुमति शुद्ध समकित गुण जागे, मिथ्या भाव पलानो । एकाकार अनेक गुणनमें, अक्षय पद निज थानो ॥ हूं तो० ॥ १ ॥ सकल उपाधि निमित भावनमें, भिन्न भिन्न चित आनो । मिलै न एक एक एकनसों, उछल उछल परमानो ॥ हूं तो० ॥ २ ॥ निज परिणाम निजहि परणतिमें, वस्तु भाव दरसानो । एकमेक यद्यपि भासत है, तोऊ भिन्न दिखानो ॥ हूं तो० ॥ ३ ॥ जन्म जरा मृत दावानलको, ज्ञान सलिलहि बुझानो । नंद ब्रह्म निजपद अनुभव बिन, जगवासी कहलानो ॥ हूं तो० ॥ ४ ॥

---

२५ राग–नट।

सुमरोजि सदा गुण आतमके ॥ टेक ॥ को जानै किम काललब्धिकी, बार अचानक आय पकै ॥ सुम० ॥ १ ॥ ज्ञायक गुणके प्रगट होतही, निजनिज शक्ति सम्हार सकै । इस संसार दुःखसागरसे, और कोउ नहिं काढ़ सकै ॥ सुम० ॥ २ ॥ थिर चित सुमरत पर गुण विसरत, साम्य भाव फिर नाहिं लुकै । मोहन धूलि अनादि लगी सिर, ज्ञान सलिलतें आप धकै ॥ सुम० ॥ ३ ॥ सुमरन भजन सार तबलों कर, जबलों कफ नहिं कंठ रुकै । नंद ब्रह्म निशिदिन निज गुणकों, भाय भाय उपयोग झकै ॥ सुम० ॥ ४ ॥

२६ राग–नट।

अजि! बिन विवेक दिन खोय रहे ॥ टेक ॥ मोह वारुणी पी अनादितें, पर पदमें नित सोय रहे ॥अजि०॥ ॥ १ ॥ नित्य बहिर्मुख राग भावयुत, कर्म बीजफल देत रहे। पाप पुण्यमें मग्न होयके, करनी अपनी ठान रहै ॥ अजि० ॥२॥ ज्ञान धवल शुचि सलिल पूरमें, आस्रव मल बह जाय रहे। बिन जाने नित अंध भावसे, बाह्यदृष्टि मल आय रहे ॥ अजि० ॥ ३ ॥ अब निजको निज जान नियतकर, परणति ज्ञानकि ज्ञान रहे। समरस स्वाद यही शिवमारग, नंद ब्रह्म जिनवचन कहे ॥ अजि० ॥ ४ ॥

२७ राग–भैरो।

आतम गुणको विकाश सम्यक् दृग देखो ॥ टेक ॥ रागादिक वर्ण आदि, परमादिक विषय त्याग। मतिज्ञान भेदमाहिं भेदरहित पेखो ॥आतम० ॥ १ ॥ संवेदन स्वय-स्वभाव, ज्ञायकमय बन्यो आप। दर्शन त्रय भेद माहिं, भेदको न लेखो ॥ आतम० ॥ २ ॥ आतम परदेश नित्य, यद्यपि है नाहिं दृष्ट। तोऊ पर्तक्ष आप, दृष्टा लख देखो ॥ आतम०॥३॥आतम स्वयभाव ज्योति, चेतन आपहि उद्योत। स्वय पर परकाश होत, दीपक सम पेखो ॥ आतम० ॥ ॥ ४ ॥ चिदऽहं अर शुद्धोऽहं, वचनरूप नाहीं हूं। नीर क्षीर एकमेक, धर विवेक देखो ॥ आतम० ॥ ५ ॥ नंद ब्रह्म जग मझार, अनुभवबिन भई ख्वार। सिद्धीको एक द्वार, सम्यक् निज पेखो ॥ आतम० ॥ ६ ॥

२८ राग–ख्याल बारवा।

म्हैंतो मेरी आज महिमा जानी ॥ टेक ॥ अबलों सुध नहिं आनी ॥ म्हैंतो० ॥१॥ आपन भूल भ्रमें भव बनमें, परमें हित नित ठानी ॥ म्हैंतो० ॥२॥ स्वानुभूति जागतही घटमें, निज स्वरूप पहिचानी ॥ म्हैंतो० ॥ ३ ॥ निर्भूषन निर्वसन दिगंबर, ज्ञायक ज्योति प्रमाणी ॥ म्हैंतो० ॥४॥ तिलतुष मात्र परिग्रह नाहीं, ज्योंकी त्यों दरसानी ॥ म्हैंतो० ॥५॥ राग द्वेष जुग पक्ष विराजित, मन पक्षी भ्रम खानी ॥ म्हैंतो० ॥ ६ ॥ रस नीरस है जात ततच्छिन, शाश्वत ज्योति दिखानी ॥ म्हैंतो० ॥ ७ ॥ नंद ब्रह्म अनुभव मंदिरमें, लख हरखै चित ज्ञानी ॥ म्हैंतो० ॥८॥

२९ राग–ख्याल बारवा।

म्हैंतो मैंही आप सरधा लानी ॥ टेक ॥ विमल भाव प्रगटानी ॥ म्हैंतो० ॥ १ ॥ लोचन-रहित रतन निज करमें, भरम रहो जग प्राणी ॥ म्हैंतो०॥२॥ अष्ट गुणनमें एकहि मूरति, सो केवल दरसानी ॥ म्हैंतो० ॥ ३ ॥ अनुभव रस बाढ़ै दिन प्रतिदिन, मोक्ष स्व-रस चख प्राणी ॥ म्हैंतो० ॥ ४ ॥ सुंदर चिंता रतन अमोलक, विरलेके मन आनी ॥ म्हैंतो० ॥ ६ ॥ चाह दाह विनसी आपहितें, समता देख पलानी ॥ म्हैंतो० ॥ ७ ॥ नंद ब्रह्म यह मिलत ज्ञानसे, धर सरधा जिनवानी ॥ म्हैंतो० ॥ ८ ॥

३० राग–परज ।

सम गुणमाहिं बिहारी, साधुजन ! सम गुणमाहिं बिहारी ॥ टेक ॥ पर इच्छा तज निज बल निज सज, स्वानुभूति भ्रम जारी । द्रव्य भाव नोकर्म रहित हो, आप स्वरूपाचारी ॥ सम० ॥ १ ॥ स्वय-संवेद भाव घटअंतर, विमल ज्ञान-दृग धारी । निज निज परणति निज-निज माहीं, देख रहे अविकारी ॥ सम० ॥ २ ॥ उदासीन शुद्धोपयोग निज, चाल चलै द्वयधारी । समय समय परणति स्वय-परमें, लगै न परकी कारी ॥सम०॥३॥ व्यक्त रूप उपयुग सम्यक् लख, सम गुण चित्त सम्हारी । तेही लहत निराकुल पद शिव, नंद ब्रह्म बलिहारी॥सम०॥४॥

३१ राग–परज ।

धन्य धन्य है ! ज्ञानी, जगतमें धन्य धन्य है ! ज्ञानी ॥ ॥ टेक ॥ अक्षय अतुल प्रमोद आत्मरस, बरसत ज्ञान सुपानी । एकीभाव भाष जड़ चेतन, तिनकी करत पिछानी ॥ धन्य० ॥ १ ॥ दीप बिना शिवमार्ग चलत है, भव तम दूर पलानी । ज्ञान सुधाकर ज्योति सदा धर, चेतन गुण सरधानी ॥ धन्य० ॥ २ ॥ चेतन देव देव निजही मैं, नाहीं द्वैत निशानी । शब्दातीत विराजित घटमें, ज्यों सागरमें पानी ॥ धन्य० ॥ ३ ॥ निरंकार अविकार निरंजन, अलख अनादि लखानी । नंद ब्रह्म तिनके करतलमें, सिद्धरूप शिव रानी ॥ धन्य० ॥ ४ ॥

३२ राग-प्रभावती ।

देखो चैतन्य देव ज्ञान ऋद्धि छाई ॥ टेक ॥ ज्ञायक स्वभाव इष्ट, सर्व भाव माहिँ श्रेष्ठ । अन्यरूप होय नाहिँ, व्यक्तरूप भाई ॥ देखो० ॥ १ ॥ रागादि अशुद्ध भाव, शुभ अशुभहि बंध भाव । उपशमादि भेदमाहिँ, रंच लिप्त नाईं ॥ देखो० ॥ २ ॥ जामें हैं गुण अनंत, स्वय-पर माहीं फिरंत । परिणति किरिया अनंत, तद्यपि निज माईं ॥ देखो० ॥ ३ ॥ सम्यक् निज निजहि भाव, बन्यो है अनादि भाव । वस्तुके स्वभाव माहिँ, संकरता नाईं ॥ देखो० ॥ ४ ॥ सामान्य विशेष धर्म, वस्तुको स्वभाव धर्म । परके निमित्त देख, परकी नहिँ काई ॥ देखो० ॥ ॥ ५ ॥ परमें एकत्व त्याग, पेखो निज निजहि भाव । नंद ब्रह्म गुरु प्रसाद, निश्चल पद पाई ॥ देखो० ॥ ६ ॥

३३ राग-प्रभावती ।

आतम जगमें प्रसिद्ध, भटके मत भाई ॥ टेक ॥ ज्ञान-दृष्टि है सुदृष्टि, पुण्य योग छांड़ इष्ट । जलमें प्रतिबिंब देख, अपनी परछाईं ॥ आतम० ॥ २ ॥ चंचल मन धाय धाय, कहूं नाहिँ थाह पाय । ज्ञायक गुण प्रगट होत, सोऽहं मति छाई ॥ आतम० ॥ २ ॥ सम्यक् ज्ञायक स्वभाव, विधि निषेध पर स्वभाव । चेतो चैतन्य आप, परकी नहिँ काई ॥ आतम० ॥ ३ ॥ ज्ञानावरणादि आदि, पुद्गल प्रकृती अनादि, रागादि अशुद्ध भाव, टारत ठकुराई ॥

आतम०॥४॥ नंद ब्रह्म एक पंथ, अनुभव निज मोक्ष पंथ। शाश्वत् अविनाशि सिद्धि, अचल ऋद्धि छाई ॥ आ० ॥ ५ ॥

३४ राग–काफी धमाल।

रे मन ! ज्ञाता माहिं लुभाना, जिन निज निजकों निज जाना ॥ टेक ॥ छहौं दरब नव तत्त्व माहिंतैं, भिन्न आप पहिचाना। ज्ञाता देख आप आपनकों, ज्ञायक रसमें साना ॥ रे मन० ॥ १ ॥ शुभ अर अशुभ कर्म इक दोनों, इनको पर पद जाना। इच्छा आशा चली आपतैं, शाश्वत् चेतन बाना ॥ रे मन० ॥ २ ॥ अखय अनंती संपति भोगैं, पै सचेत निज थाना। नंद ब्रह्म धन ! तेई जगमें, जीवनमुकत कहाना ॥ रे मन० ॥ ३ ॥

३५ राग–काफी धमाल।

भैया ! सो आतम जानो रे ॥ टेक ॥ भैया० ॥ स्वच्छ स्वभावी आरसी ज्यों, तैसी आतम जोत। जदपि भास सब होत है रे, तदपि लेप नहिं होत ॥ भैया० ॥ १ ॥ ज्ञान दशा अज्ञान दशा रे, दोनों विकलपरूप। निरविकलप इक आतमा रे, ज्ञायक घन चिद्रूप ॥ भैया० ॥ २ ॥ तन-वच सेती भिन्न कर रे, मन निमित्त चित् आन। आप आपको ज्ञायक मेरे, रहो न मनको थान ॥ भैया० ॥३॥ दान शील व्रत भावना रे, शुभ करनी भरमार। नंद ब्रह्म इक ज्ञायक रस रे, चेत चेत भव पार ॥ भैया० ॥ ४ ॥

३६ राग-सोरठा।

देख देख निज आतमको ॥ टेक ॥ ज्ञान विभूति विराज रही नित, लोकालोक प्रकाशनको ॥ देख० ॥ १ ॥ सिद्ध शुद्ध नित तीनलोक पति, चिनमूरति पद चेतनको। आपहि ज्ञेय ज्ञान गुण मंडित, देख महातम आतमको ॥ देख० ॥ २ ॥ बंध मोक्ष विकलप दुखदायी, त्याग भजो निज आतमको। पुरुषाकार बन्यो निजमूरति, जिनपद निजपद पेखनको ॥ देख० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म चित-विकल मिटयो जब, देखो निजमय आतमको। वचनअगोचर लक्ष कियो सब, लक्षमें लक्ष विचच्छनको ॥ देख० ॥४॥

---

३७ राग-सोरठा।

सुन मन! भजो आतम देव ॥ टेक ॥ काल अनँत फिरो अनादी, भजो नहीं निजदेव ॥ सुन० ॥ १ ॥ आत्मज्ञायक ज्योति जगमग, है अनाद्य अनंत। ज्ञानदर्श चतुष्ट धारी, सिद्ध शुद्ध महंत ॥ सुन० ॥ २ ॥ अचल अविनाशी अनाकुल, जनम मरन न नेह। अखय पद शाश्वत् विराजै, चेतना है देह ॥ सुन० ॥ ३ ॥ निरविकल्प मई अनूपम, रागादिक नहिं लेश। बंध मोक्ष स्वभाव नाहीं, शुद्ध आत्म-प्रदेश ॥ सुन० ॥ ४ ॥ वर्ण आदी योग त्रय अर, मार्गणा नहिं जान। गुणस्थानहू नाहीं जामें, लिंग नाहीं मान ॥ सुन० ॥५॥ ज्ञान दर्शन चरण तीनों, छोड़ यह व्यवहार। निरभेद किरिया तीन निहचै, द्रव्य माहिं निहार ॥ सुन०

॥ ६ ॥ ज्ञेय ज्ञायक एक आपहि, आप जानो आप । खेल जगको मिट गयो तब, कहां पुण्य रु पाप ॥ सुन० ॥ ७ ॥ नंद ब्रह्म विचार देखो, स्यादवाद प्रमान । गुरु कृपा छिनमें प्रकाशे, शुद्ध अनुभव ज्ञान ॥ सुन० ॥ ८ ॥

३८ राग-सोरठा ।

ब्रह्मज्ञान यह जान जान भविजन ॥ टेक ॥ छहों दरब नव तत्त्वमाहिं इक, आपही ज्ञायक जान जान भविजन ॥ ब्रह्म० ॥ १ ॥ पंच परमपदमाहिं एकही, आतम देव विराजै । सम्यक् त्रय संयमी स्वभावी, देख करम सब भाजै ॥ ब्रह्म० ॥ २ ॥ ज्ञान चेतना है निजवंशी, बाकी पुद्गल केरी । केवलज्ञान विभूति गुणातम, और पेख भ्रम चेरी ॥ ब्रह्म० ॥ ३ ॥ एकेंद्री पंचेंद्री पुद्गल, जीव अतिंद्री ज्ञाता । नंद ब्रह्म इह ब्रह्मरूपको, देख स्वभावी नाता ॥ ब्रह्म० ॥ ४ ॥

३९ राग-गौरी ।

मानुष जनम गमायो ॥ टेक ॥ पर पद माहिं गृद्ध अति होकर, भ्रम मदिरा नित असनायो ॥ मानुष० ॥ १ ॥ तीरथ तीरथ भ्रमत दुखित भये, ब्रह्मरूप कहुं नहिं पायो । चार गतिनके दुःख सहे बहु, रंक होय नित बिललायो ॥ मानुष० ॥ २ ॥ दान शील व्रत तप बहु कीनो, शास्त्र ज्ञान नित बहु भायो । पोपटकी ज्यों रटन करी नित,

भेदज्ञान चित नहिं आयो ॥ मानुष० ॥ ३ ॥ आतमराम सभी घटअंतर, ज्ञान अपूरव दरसायो । चकमकमें ज्यों आग रहे नित, त्यों तन भेद नहीं पायो ॥ मानुष० ॥४॥ नंद ब्रह्म अति निकट निपट है, चेतन अंक देख गायो । जिनके ओट पहार रहे नित, तिनने भेद नहीं पायो ॥ मानुष० ॥ ५ ॥

---

४० राग–गौरी ।

माई ! जिन दरशन अब पायो ॥ टेक ॥ जिन-मंदिरमें जिनकी मूरति, आपको आप बतायो ॥ भाई०॥१॥ पद्मासन जिनराज बिराजे, निर्विकार छबि छायो । नाशा-अग्र-दृष्टि निश्चल रख, सोऽहं आप लखायो ॥ भाई० ॥२॥ ज्ञायकमय चैतन्यमूर्ति निज, उद्धत ज्योति लखायो । खूबीसे निज ब्रह्मरूपको, विश्वमयी दरसायो ॥ भाई० ॥ ३ ॥ देह आत्म नहिं वचन आत्म नहिं, मन विकल्पमय गायो । ज्ञायकमय सरवज्ञ निजातम, मैंही तूही सुनायो ॥ भाई० ॥ ४ ॥ ध्यान जोग जप तप श्रुत इनको, थिरता निमित बतायो । आत्मस्वरूप सुलभकर आपहि, दृष्टिमें दृष्ट लगायो ॥ भाई० ॥ ॥ ५ ॥ जिन दर्शन यह आत्म साक्षमय, अनुपम भेद जनायो । सिद्ध स्वरूप सिद्धमय पदकों, छनमें लक्ष करायो ॥ भाई० ॥ ॥ ६ ॥ निराकार निरवचन निरंजन, बीतराग छवि छायो । मूरतिमें चिन्मूरति पदको, बिरले जनने पायो ॥

भाई० ॥ ७ ॥ नंद ब्रह्म चित् स्वच्छ विकासी, गुरु पद शीश नवायो। सोऽहं वाणी निरक्षर जानी, विकलप आप पलायो ॥ भाई० ॥ ८ ॥

---

४१ राग–केदारो।

रे जिय! क्यों तू छोड़े विवेक ॥ टेक ॥ भूलहीतें भ्रमत आयो, धार अब निज टेक ॥ रे जिय० ॥ १ ॥ संत निज पद जान निजमें, जगसे है निरलेप। कर्मकृत सुख दुःख भोगें, कर्म नाहीं लेप ॥ रे जिय० ॥ आत्मज्ञान स्वभाव शक्ती, है निरंजन देव। चेतन प्रकाशक बोध केवल, स्वच्छ निर्मल एव ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥ कोटि जन्म कियो तपस्या, पायो नहीं निज भेद। स्वर्गके सुख भोग जगमें, करै नितप्रति खेद ॥ रे जिय० ॥ ४ ॥ चैतन्य ज्ञायक रस विकाशी, देख निजमय एव ॥ नंद ब्रह्म अचेत पदको, छोड़ अब स्वयमेव ॥ रे जिय० ॥ ५ ॥

४२ राग–आशावरी।

अब हम निज पद नहिं विसरेंगे ॥ टेक॥ काल अनादि मिथ्यात्वके कारण, तिनको दूर करेंगे ॥ अब० ॥ १ ॥ पर संगतिसे दुख बहु पायो, तातैं संग तजेंगे। शुभ अर अशुभ राग द्वेषनका, संग न भूल करेंगे ॥ अब० ॥ २ ॥ करम विनाशी जगके वासी, सम्यग्दृष्टि धरेंगे। मैं अविनाशी जगत् प्रकाशी, चेतन-घरहि रहेंगे ॥ अब० ॥३॥

जनम मरन तनकी संगतिसें, क्यों अब भूल करेंगे ॥ नंद ब्रह्म निज-आत्म-भूत पद, बिन निरखे निरखेंगे ॥ अब० ॥ ४ ॥

---

४३ राग-आसावरी।

भाई! आत्मप्रभा चित छायो ॥ टेक ॥ मिथ्या भाव जारि आपहितें, स्वात्मनुभूति जगायो ॥ भाई० ॥ १ ॥ भाई बंधु अर कुटुम-कबीला, है तनका सब नाता। चेतन ज्योति सभी घटअंतर, देख स्वभावी ज्ञाता॥ भाई० ॥ २ ॥ राग द्वेष सुख दुख अर व्याधी, कर्म उदय फल आवै। ज्ञान चेतना नित्य विकाशी, भिन्न आप दरसावै ॥ भाई० ॥३॥ नंद ब्रह्म चित् भ्रमर होय कर, आतम रस नित स्वादै। नाहीं तो फिर काल आयकर, आपन घरको लादै ॥ भाई० ४

४४ राग-गौरी।

देखो भाई! देव निरंजन राजैं ॥ टेक ॥ तीन कालमें छबी एकही, ज्ञायकमय गुण साजैं ॥ देखो० ॥ १ ॥ अर्हत् सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पंच नाम इक धारे। दरशन ज्ञान चरणकी मूरति, संशय-तिमिर विदारै ॥ देखो० ॥२॥ ज्ञान विभूति देख आतमकी, संत निरंतर गावैं। केवल-ज्ञान निधी निज घरकी, बाहिर क्यों भरमावैं ॥ देखो० ॥३॥ नंद ब्रह्म औसर नहिं छाड़े, मगन भये गुण गावै। ज्ञानकला दश दिशमें फैली, क्यों इत उत भरमावै ॥ देखो० ॥ ४ ॥

---

४५ राग-धनाश्री ।

रे मन ! उलटी चाल चलै ॥ टेक ॥ पर संगतिमें भ्रमतो आयो, पर सँग बंध फलै ॥ रे मन० ॥ १ ॥ हितको छोड़ अहितसों राचै, मोह पिशाच छलै । उठ उठ अंध सँभार देख अब, भाव सुधार चलै ॥ रे मन० ॥ २ ॥ आओ अंतर-आतमके ढिंग, परको चपल टलै । परमातमको भेद मिलतही, भवको भ्रमण गलै ॥ रे मन० ॥ ३ ॥ मनके साथ विवेक धरो मित, सिद्धस्वभाव वरै । बिना विवेक यही मन छिनमें, नरक निवास करै ॥ रे मन० ॥ ४ ॥ भेदज्ञानतैं परमातमपद, आप आप उछरै । नंद ब्रह्म पर पद नहिं परसै, ज्ञान स्वभाव धरै ॥ रे मन० ॥ ५ ॥

---

४६ राग-धनाश्री ।

ज्ञानी ! आपन पंथ चलै ॥ टेक ॥ त्रिकालज्ञ बल पाय स्वभावी, जिनको पुत्र रलै ॥ ज्ञानी० ॥ १ ॥ राग द्वेष क्रोधादि संतती, पुण्य पाप उछरै । ज्ञानरूप बूटी है करमें, दंशन नाहिं करै ॥ ज्ञानी० ॥ २ ॥ व्रत तप किरिया यती करत हैं, अंतर देख भलै । किरिया चितमें थिरता आनै, ज्ञानी आप चलै ॥ ज्ञानी० ॥ ३ ॥ सिद्धमई पद आपन पायो, क्यों पर आश करै । नंद ब्रह्मकी भूल मिटतही, लिख लिख ध्यान करै ॥ ज्ञानी० ॥ ४ ॥

४७ राग—सारंग।

सुन मन! चेत, चेत, चेतन रे ॥ टेक ॥ कल्प अनंत भ्रमत बहु बीते, अब सम्यक् अनुसर रे ॥ सुन मन० ॥१॥ छहों दरबमें चेतन एकहि, पुद्गल पाँच पसर रे। बिछुरन मिलन स्वभावी पुद्गल, ज्ञायकमय चेतन रे ॥ सुन मन० ॥ २ ॥ आत्म त्रय गुण परके साथी, है अनादि बिछुरन रे। जब सम्यक् अनुभव चित आनो, मिलै आप त्रय धन रे ॥ सुन मन० ॥ ३ ॥ बहिरातमकी संगति तजके, अंतःपुर अब चल रे। इस पुरमें सब विकल टारकै, सोऽहं मरम समझ रे ॥ सुन मन० ॥ ४ ॥ नंद ब्रह्म तो अब निज घरमें, बात बनी इकदमरे। आशा फासा छूट चली अब, ज्यों पंथी उठ चल रे ॥ सुन मन०॥५॥

४८ राग—सारंग वृंदावनी।

जगत्में है सम्यक्त प्रधान ॥ टेक ॥ जा प्रसाद तीर्थंकर पद लहि, पावत अविचल थान ॥ जगत्में० ॥ १ ॥ सम्यक् गुण बिन दीन पथिक सम, भयो बहुत बेहाल। अजहू चेत गहो निज पदको, देख सिद्ध सम काल ॥ जगत्में० ॥ २ ॥ व्रत तप संयम किये काल बहु, धरी न सम्यक् टेव ॥ ग्रंथी भेद करौ निहचै जब, मिटैज गत्को मेव ॥ जगत्में० ॥ ३ ॥ ज्ञान विभूति भरी [illegible] माहीं, गहो शरण निज देव। नंद ब्रह्म जापै [illegible] आवै [illegible] मुकत स्वयमेव ॥ जगत्में० ॥ ४ ॥

४९ राग-सारंग वृंदावनी।

बिराजे आत्मदेव भगवन् ॥ टेक ॥ घट घटमें घटरूप बिराजे, चंद्रकाश बुध जन ॥ बिराजे० ॥ १ ॥ चेतन लक्षण सिद्ध अरूपी, आतमकी निज ज्योत। क्षीर नीर ज्यों मिल्यो अनादी, भिन्न नित्य उद्योत ॥ बिराजै० ॥ २ ॥ पँच इंद्रियके माहिं बासकर, पाचोंतैं है भिन्न। ज्यों बादलमें भानु उदय है, होय नाहिं कछु खिन्न ॥ बिराजै० ॥ ३ ॥ देह माहिं रहि छोड़त नाहीं, आपन चेतन रूप। लाल कीचके माहिं परो यदि, नाहिं कीच सम रूप॥ बिराजे०॥४॥ गुण अनंत जामें नित राजे, है गुणमें नित आप। दीवेमें जो ज्योति दिखत है, ज्योतहि दीवा व्याप ॥ बिराजे० ॥ ५ ॥ करमनके नित बीच बसत है, तऊ करमसे दूर। कमल फूल ज्यों रहे नीरमें, ऊर्द्ध स्वभावी-सूर ॥ बिराजे० ॥ ६ ॥ पुण्य पाप सुख दुखके माहीं, नाहीं सुख दुखरूप। ज्यों दरपनमें धूप छाँह है, घाम-शीत नहिं रूप ॥ बिराजे० ॥ ७ ॥ ज्ञान भाव उछलत नितप्रतिही, सागर लहर समान। नंद ब्रह्म अब कहूँ कहाँलों, अनुभवरूपी जान ॥ बिराजे० ॥ ८ ॥

---

५० राग-रामकेली।

प्राणी! चेत सुदिन यह बेला ॥ टेक ॥ नदी नांव संयोग जान यह, जिनवाणीको भेला ॥ प्राणी० ॥ १ ॥ यह संसार विनश्वर देखो, इंद्रजाल ज्यों खेला। सुख

संपती पुन्यके साथी, है छिन भरका मेला ॥ प्राणी०॥२॥ अंध भयो आतम गुण भूलत, खोल आँख यह बेला । मैं मैं करत चहूँ गति डोलै, पर फाँसी गल देला ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म अब पर संगति तज, भयो सुगुरुका चेला । वचन प्रतीति आन चित पंकज, होय सहज सुर-झेला ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥

---

५१ राग-रामकेली ।

प्राणी ! देख आतम निजरूप, तीनों काल भिन्न पर-सेती, अनुपम चेतन रूप ॥ टेक ॥ यह सब कर्म उपाधी जानो, राग द्वेष भ्रम खेल । इनको दूर खेप निज पेखो, है जिनवरका मेल ॥ प्राणी० ॥ १ ॥ करमनका संयोग देखकर, आतम दरपन माहिं । ऊपर ऊपर भासू दिसत है, लपट रही कछु नाहिं ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ जेवरि ताहि सर्प कर मानो, मर्कट मूठी बंद । त्योंही परको मान रहो निज, तू चेतनमय चंद ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ देह जीव पाषान कनकको, भिन्न सदा परदेश । माहीं माहीं संधि रहे नित, मिलत नहीं लवलेश ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥ करम संग आच्छाद देखिये, ज्ञान-चंद्र परकाश । ज्योंका त्यों शाश्वत् नित राजै, होय रंच नहिं नाश ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥ स्फटिक शिला ज्यों वर्ण संगतें, तदाकार निज होत । छोड़त नाहीं निज निज गुणको, देखो भिन्न उद्योत ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ त्रस थावर नर नारकी जु सब, नाम दृष्टि

यह भेद । निश्चय देख जीव इक रूपी, ज्यों पट सहज सुफेद ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ गुण ज्ञानादि अनंत गुणातम, पज्जयं[1] शक्ति अनंत । नंद ब्रह्म इक ज्ञायक रसको, वेद यही सिद्धंत ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥

५२ राग-गौरी ।

भाई! आतम अनुभव ल्यावो ॥ टेक ॥ मोह अज्ञानमई विष खिचड़ी, जान बूझ मत खावो ॥ भाई० ॥१॥ दुख चिरकाल सहे अति भारी, तिनको सहज खिपावो । चार गतीसे रहित ज्ञानपद, देख परम पद ध्यावो ॥ भाई० ॥ २ ॥ राग द्वेष पुद्गलके साथी, पुद्गलसे उपजायो । आपन मान पर्‍यो भव दुखमें, भूल भूल चित ल्यावो ॥ भाई० ॥ ३ ॥ ज्ञान चेतना देख नित्यही, नितप्रति अनुभव ल्यावो । नंद ब्रह्म शिव पद निज पदमें, ध्यान ज्ञान रस भावो ॥ भाई० ॥ ४ ॥

५३ राग-मल्हार तथा सोरठ ।

देखो भाई! क्या अंधेर पसारा ॥ टेक ॥ आपन पदको आप बिसरके, चार गती चितधारा ॥ देखो भाई० ॥१॥ ग्रहको त्याग बसै बसतीमें, चारित दोष संभाले । कथनी कथत बहुत खूबीसे, राग द्वेष चित पालै ॥ देखो भाई० ॥ २ ॥ जड़सों राचि आत्मपद साधैं, कर्मचेतना भारी ।

[1] पर्याय ।

भेदज्ञान बिन निजपद भूल्यो, पर पद माहिं भिखारी ॥ देखो० ॥ ३ ॥ जोग माहिं चितको स्थिर करनो, रेचक त्रय सब गावै। ज्ञानमयी लंगर बिन बांधे, थिरता गुण किम आवै ॥ देखो० ॥ ४ ॥ सामायक त्रय कालहि करते, अतीचारको टालें। सर्वभूत समता जिस पदमें, ताको क्यों न सम्हालें ॥ देखो० ॥ ५ ॥ बकसो ध्यान रटन पोपटसी, कुलकी टेक विचारें। समता बोधमयी चिन् मूरति, विरले ही चित धारें ॥ देखो० ॥ ६ ॥ ग्रंथी भेद कियो नहिं अज हूँ, क्या कीनी चतुराई। द्रव्यलिंगतैं सिद्ध होय नहिं, पर संगति दुखदाई ॥ देखो० ॥ ७ ॥ घर अर वनको विकल मेटकै, राग द्वेष कर न्यारो। नंद ब्रह्म अब नींद खोलकर, देखो अलख पसारो ॥ देखो० ॥ ८ ॥

---

५४ राग—आसावरी जोगिया।

भाई! कबहुं न निज घर आयो ॥ टेक ॥ निशिदिन पर पद अंध होयकर, परको निजकर भायो ॥ भाई० ॥ १ ॥ जिनवाणीको मरम न जानो, करनी भरम लुभायो। जपी तपी मैं मोक्षमारगी, मैं मैं ही लपटायो ॥ भाई० ॥ २ ॥ निज गुण पर गुण पठन किये बहु, आचारज कहलायो। निज गुणमें थिरता नहिं जागी, कन खोखै तुष खायो ॥ ३ ॥ पर सम्यक्में सावधान रहि, चित्त दोष नित टालो। निज सम्यक् आतम अनुभवमें, छिनहु

न चित्त संभालो ॥ भाई० ॥ ४ ॥ जिनवाणीमें सम्यक् पदको, जहँ तहँ शोर मचायो। नंद ब्रह्म गुरु पद नम नमके, निज सम्यक् घर पायो ॥ भाई० ॥ ५ ॥

५५ राग–केदारो।

रे जिय! जनम लेउ संभार ॥ टेक ॥ ज्ञान बिन सब क्रिया झूठी, होय नहिं भव पार ॥ रे जिय० ॥१॥ ज्ञान सम्यक् निज स्वभावी, कोउ नहिं करतार। संबँध दृष्टी दूर होतही, प्रगट अपरंपार ॥ रे जिय० ॥ २ ॥ आत्म अनुभव स्वादि होकर, करो जप तप आदि। उत्साह नाहीं खेद नाहीं, आप अनुभव भार ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥ सिद्धको विकलप जहाँलौं, नाहिं अनुभव सार। नंद ब्रह्म स्वभाव देखो, और सब भरमार ॥ रे जिय० ॥ ४ ॥

५६ राग–केदारो।

सुन मन खोल आँख अवार ॥ टेक ॥ देख इत उत चेतनामय, प्रगट आप अपार ॥ सुन० ॥ १ ॥ देहमाहीं देह नाहीं, नित्य है अमलान। त्याग विधिको लेश नाहीं, आप ज्ञायक खान ॥ सुन० ॥ २ ॥ जनम मरण वियोग नाहीं, काय क्लेश न लार। शब्दहूको विकल्प नाहीं, शुद्ध अनुभव सार ॥ सुन० ॥ ३ ॥ बंध मोक्ष स्वभाव नाहीं, है महंत अपार। नंद ब्रह्म त्रिलोक व्यापी, ज्ञान अपरंपार ॥ सुन० ॥ ४ ॥

५७ राग–केदारो।

रे जिय ! मगन रहु इक तान ॥ टेक ॥ राग द्वेष विभाव परिणति, अमल चेतन जान। रे जिय० ॥ १ ॥ लवण है इक क्षाररूपी, देख नित्य स्वभाव। त्योंहि आतम चेतनामय, तीन काल लखाव ॥ रे जिय० ॥ २ ॥ चंद्र भूतल माहिं व्यापक, रंच नाहीं लिप्त। त्योंहि आतम गुण विकाशी, ज्ञान भाव अलिप्त ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥ लोक लोकाकाश व्यापी, नभ सदा निरलेप। त्योंहि आतम सहज ज्ञायक, देख नित्य अलेप ॥ रे जिय० ॥ ४ ॥ लहर सागर माहिं व्यापक, नीर लख नहिं भूम। नंद ब्रह्म विवेक ल्यावो, चेत चेतन भूम ॥ रे जिय० ॥ ५ ॥

---

५८ राग–केदारो।

रे जिय ! मगन है आराध ॥ टेक ॥ अलख पुरुष महंत जगमें, देख निर्मल साध ॥ रे जिय० ॥ १ ॥ जहां जैसा भाव होवै, तहां तैसा भेष। देख निर्मल आपनो पद, भेषको नहिं लेश ॥ रे जिय० ॥ २ ॥ मोह संशय चपलतामें, देख चेतन अंश। नित्य अविचल ज्ञानमय पद, चेतना है वंश ॥ रे जिय० ॥ ३ ॥ परमाद उद्यम उदय माहीं, ज्योति अनुपम सेव। निक्षेप नयके भेद माहीं, उदय है स्वयमेव ॥ रे जिय० ॥ ४ ॥ विवहार निश्चै वचन माहीं, देख विकलप रूप। विकलमें निरविकल

जागे, वोहि आतम रूप ॥ रे जिय० ॥५॥ रत्न चिंतामण अमोलक, बुध विवेकी पाय। नंद ब्रह्म संभार देखो, फेर नाहिं उपाय ॥ रे जिय० ॥ ६ ॥

---

५९ राग-मल्हार ।

अब हम भेदज्ञान चित ठानो ॥ टेक ॥ आठ प्रदेश बिना तिहुँ जगमें, भवभवमें भरमानो ॥ अब० ॥ १ ॥ देव धरम गुरु भेद न पायो, परमें हित निज मानो। आपन पद चैतन्य स्वभावी, देव धरम नहिं जानो ॥ अब० ॥ २ ॥ दुख चिरकाल सहे अति भारी, तिनको सहज खिपावो। दुरित हरन भ्रम रोग निवारन, ज्ञानामृत असनावो ॥ अब० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म कहैं संतनको, उलट देख चित ल्यानो। अलख अमूरति देव निरंजन, सोऽहं घर निज जानो ॥ अब० ॥ ४ ॥

---

६० राग-विलावल ।

निजरूप देख मन बावरे! कहां इत उत भटकै ॥ ॥ टेक ॥ रागादिक विष वेलमें बार बार अटकै ॥ निज० ॥ १ ॥ दुर्लभ नरभव पायकै, खोज लेउ झटकै। धर विवेक सुद आनरे, पर रस मत गटकै ॥ २ ॥ छनिक एकहू सफल है, आतमरस अटकै। कोटि बरस जीवन वृथा, अनुभव बिन भटकै ॥ निज० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म निज

स्वादि हो, आतम रस गटकै। भव भवके दुख छिनकमें, आप जाय फटकै ॥ निज० ॥ ४ ॥

६१ राग–ख्याल।

वे कोइ निपट अनारी, देखा आतम राम ॥ टेक ॥ विनाशीक परतच्छ दिसत है, खेल जगत्का सारी। लिप्त रहै ताहीमें निशिदिन, हा! हा! करत पुकारी ॥ वे कोइ० ॥ १ ॥ बहिर भावमें चतुर रहे नित, अंतरदृष्टि अँधारी। मिथ्या भाव बहै घटअंतर, यह दुर्गतिकी त्यारी ॥ वे कोइ० ॥ २ ॥ मोह पिशाच ठगनसों नातो, लाज सबै परिहारी। कर्मचेतना परवंशावलि, क्यों है रहो भिखारी ॥ वे कोइ० ॥ ३ ॥ हाड़ मांस देवलके माहीं, अलख छबी विस्तारी। नंद ब्रह्म त्रैलोकि आपही, भूल मेट नहिं ख्वारी ॥ वे कोइ० ॥ ४ ॥

६२ राग–बिलावल।

बाहिरमें मन सूरमा, अंतर नहिं राचा ॥ टेक ॥ भेदज्ञानके चावमें, नित्य रहे काचा ॥ बाहिर० ॥ १ ॥ चेतन लक्षण एक ही, आतमीक साँचा। जड़ आश्रित जड़ भाव है, देख लेउ जाँचा ॥ बाहिर० ॥२॥ कर्म उदयके रोगमें, स्वाँग धारि नाचा। मग्न होय इक तानमें, लखै स्वाँग साँचा ॥ बाहिर० ॥ ३ ॥ इस अनादिके खेलको, छोड़ मित्र वाचा। नंद ब्रह्म धन आपका, देख देख नाचा ॥ बाहिर० ॥ ४ ॥

६३ राग–मल्हार ।

काहेको भरम्यो अति भारी, रे मन ॥ टेक ॥ पूरब करमनकी गति देखो, आप आपही त्यारी ॥ काहेको० ॥ १ ॥ छहों दरबकी तीन कालमें, गति न्यारीकी न्यारी। जिन आगमको सारूप सब, धर विवेक है सारी ॥ काहेको० ॥ २ ॥ चेतन लक्षण आत्मभूत है, सो तो टरत न टारी। नित्य असंख्य प्रदेश रूपही, सिद्ध शुद्ध गुणधारी ॥ काहेको० ॥ ३ ॥ तीनलोक पति सिद्धरूपसम, क्यों है रहो भिखारी। नंद ब्रह्म अब जान बूझकर, भरम छोड़ नहिं ख्वारी ॥ काहेको० ॥ ४ ॥

---

६४ राग–मल्हार ।

अब हम सम्यक् कुल निज पायो ॥ टेक ॥ काल अनादि भ्रमत बहु बीते, पर कुलमें लपटायो ॥ अब० ॥ १ ॥ श्रावक-व्रत मुनि-व्रत बहु धारे, चित्त नहीं सुलटायो। कर्म चेतनाके वश होकर, सम्यक् रतन भुलायो ॥ अब० ॥ २ ॥ परावर्त पूरी बहु कीनी, सो दुख कहो न जायो। लख चौरासी स्वाँग धारिकैं, सम्यक् रूप न पायो ॥ अब० ॥ ३ ॥ सम्यक् आतम अनुभवके बिन, करनी जग भरमायो। नंद ब्रह्म यह सम्यक् महिमा, आपहि आप दिखायो ॥ अब० ॥ ४ ॥

---

६५ राग–विहागरो ।

रे तू आतम गुण नहिं चीना ॥ टेक ॥ विषय स्वादमें लीन रहो नित, नरभव फल नहिं लीना ॥ रे तू० ॥ १ ॥ जप तप करके पुण्य कमाये, प्रभु पद नाहीं चीना । अंतर गति निज भाव न जानो, कन धोखे तुष लीना ॥ रे तू० ॥ २ ॥ बैठ सभामें बहु उपदेशे, नाम अनेक धरीना । ग्रंथी-भेद भई नहिं अजहूँ, है मिथ्यात्व प्रवीना ॥ रे तू० ॥ ३ ॥ नंद ब्रह्म जो सुख चाहत हो, रहो एकरस भीना । धारावाही विकशत आपहि, ज्ञायक धरम प्रवीना ॥ रे तू० ॥ ४ ॥

६६ राग–विहागरो ।

अब हम ब्रह्मरूप पहिचाना ॥ टेक ॥ तीन लोकमय नित्य विकाशी, है चैतन्य निशाना ॥ अब० ॥ १ ॥ रागादिक अर सुख दुख संतति, मेरा है नहिं बाना । ज्यों अग्नी व्यापक नभ माहीं, तदपि अलिप्त प्रमाना ॥ अब० ॥२॥ नयनों सेती देख रहे सब, विनाशीक नित जाना । देखनहारा मैं अविनाशी, जनम मरन कहँ थाना ॥ अब० ॥३॥ जिस पदकी सब चाह करत हैं, वह घट माहीं पाना । नंद ब्रह्म निज रूप मगन अब, ज्ञानकला दरशाना । अब० ॥ ४ ॥

६७ राग–काफी ।

भाई ! आतम ज्ञान विचारोरे ॥ टेक ॥ जा बिन भव

भवमें दुख पायो, ताको नाहिं प्रमानोरे ॥ भाई० ॥ १ ॥ रागद्वेष क्रोधादि भाव ये, पुद्गलसे उपजायोरे । तू आपन पदके अजानतें, रागद्वेषमय भायोरे ॥ भाई० ॥ २ ॥ जप तप संयम चित थिर करनो, चित्त प्रसन्न करानोरे । औदायिक यह भाव जानके, अजहूँ चेत सियानोरे ॥ भाई० ॥ ३ ॥ आत्मभूत संयम बिन जाने, वृथा सर्व तप चरणोरे । नंद ब्रह्म इक ज्ञानामृतमय, एक स्वाद चित आनोरे ॥ भाई० ॥ ४ ॥

६८ राग-काफी ।

भाई ! आतमको पहिचानोरे ॥ टेक ॥ दुख चिरकाल सह्यो अति भारी, सो नहिं जात बखानोरे ॥ भाई० ॥१॥ क्षीर नीर ज्यों चेतन पुद्गल, है अनादि इक ठानोरे । ता कारण बिन भेदज्ञानतें, तू परमें लपटानोरे ॥ भाई० ॥ २ ॥ ग्यारह अंग पढ़े अरु पूरव, आचारज कहलानोरे। शास्त्रज्ञानमें मगन होय नित, स्वात्म ज्ञान नहिं जानोरे ॥ भाई० ॥ ३ ॥ औरोंको उपदेश देयकर, ग्रंथी-भेद करानोरे। आपन ग्रंथी करी कठिन अति, देखो नहिं निज बानोरे ॥ भाई० ॥ ४ ॥ तेरे घट अंतर चिन्मूरति, चेतनही निज थानोरे । नंद ब्रह्म निज पदको परसे, छूट जाय भव बानोरे॥ भाई० ॥ ५ ॥

६९ राग-काफी ।

भाई ! क्यों है रहा दिवानारे ॥ टेक० ॥ जाको ढूँढै

तीनलोकमें, सो तो घटमें थानारे ॥ भाई० ॥ १ ॥ कर्म स्रोतकी धार चली है, क्यों तामें हित मानारे। शुभ अर अशुभ दोयकी माता, एक वेदनी जानारे ॥ भाई० ॥२॥ कर्मचेतना अरु फल दोनों, औदायिक परमानारे। ज्ञान-चेतनाके प्रकाशमें, देख लेउ निज बानारे ॥ भाई० ॥३॥ ज्ञानमई उपयोग जगत्में, आप आप उछलानारे। रहे नित्य अपने स्वभावमें, पारख लेउ सियानारे ॥ भाई० ॥ ४ ॥ ज्ञानमई जगदीश पासही, मिथ्याभाव भ्रमानारे। रज्जू सर्प भास यद्यपि है, सर्प नहीं चित ल्यानारे ॥ भाई० ॥ ५ ॥ यह परतक्ष भाव इक ज्ञायक, आतममय पद ध्यानारे। नंद ब्रह्म निज स्वादी होकर, बैठ जाउ इक थानारे ॥ भाई० ॥ ६ ॥

---

७० राग-देवगंधार।

आपहि भाग चली भ्रमजाल ॥ टेक ॥ आपरूप आपन भासतही, प्रगटी ज्ञान मशाल ॥ आपहि० ॥ १ ॥ सम्यक् स्वातम रस आस्वादो, ज्ञायकमय त्रैकाल ॥ आ० ॥ २ ॥ त्याग ग्रहन विधि विकलप भागी, जगो भाव सु रसाल ॥ आ० ॥ ३ ॥ केवल शुद्ध स्वभाव प्रकाशै, घटमें देख निहाल ॥ आ० ॥ ४ ॥ देह जगत्में आप प्रकाशक, ऊर्द्ध मध्य पाताल ॥ आ० ॥ ५ ॥ ज्ञान ध्यानमें वचन मानमें, भास रहो समकाल ॥ आ० ॥ ६ ॥ सर्व ऋद्धि इक जाति देहमय, जनम जरा अर काल ॥ आ० ॥ ७ ॥ नंद ब्रह्म अब कहे कहालों, गुरुबिन है बेहाल ॥ आ० ॥ ८ ॥

७१ राग-देवगंधार।

मेरो नाम सिद्ध भगवान ॥ टेक ॥ सिद्ध लोक अर नगर चेतना, जनमभूमि इस थान ॥ मेरो० ॥ १ ॥ माता ज्ञान पिता सम्यक्त्व मम, इनको पुत्र सुजान ॥ मेरो० ॥ २ ॥ स्वपर प्रकाशक महल बन्यो निज, ज्ञायक है तिस नाम ॥ मेरो० ॥ ३ ॥ रतन जड़ित अर त्रय गुण मंडित, जगमग पलँग महान ॥ मेरो० ॥ ४ ॥ स्वात्म-भूति नारी मम प्यारी, कुलवंती गुणवान ॥ मेरो ॥ ५ ॥ प्रगट भाव यह पुत्र चतुष्टय, शाश्वत् गुण परमान ॥ मेरो० ॥ ६ ॥ ब्रह्मानंद बाग फल फूलै, भ्रमर करै नित गान ॥ मेरो० ॥ ७ ॥ उड़ै सुबास सदा सोऽहंकी, नंद ब्रह्म चित ठान ॥ मेरो० ॥ ८ ॥

---

७२ दादरा।

कैसे कहूँ गुरुदेवकी महिमा खरी खरी। सब ग्रंथ माहिं देखिये गायन करी करी ॥ टेक ॥ अनादिकालकी हुती अज्ञान वासना। इक छिनमें बोध होत ही मिथ्या जरी जरी ॥ कैसे० ॥ १ ॥ जीव सिद्ध मनुज आदि सर्व भेद कल्पना। सब कर्म जाल टारके दिलमें धरी धरी। कैसे० ॥ २ ॥ भवसिंधु नीर भँवर माहिं नाव फँस रही। निज ज्ञानके प्रमाणसे आपहि तरी तरी ॥ कैसे० ॥ ३ ॥ अपनेमें आप आपको दिखला दिया मुझे। जब द्वैत्य भाव नंद ब्रह्म की टरी टरी ॥ ४ ॥

द्वितीय भाग ।

कविता आत्म-प्रमोद यह, स्वरस रसिक हो मित्त।
भेदज्ञान बल आप लख, पढ़ो पढ़ावो नित्त ॥

द्वितीय भाग—कविता-संग्रह।

अनुभव-लहर—दशोत्तरशत।

मंगलाचरण—दोहा।

सिद्धज्ज्योति स्वभावमय, जग व्यापक स्वयमेव।
सकल भेदको दूर कर, जिनपद कर नित सेव ॥ १ ॥
चित्त सरोवर जल विषैं, भाव लहर लहलाय।
नमूं स्वभावी स्वच्छ गुण, उपजै विनशै नाय ॥ २ ॥

सवैया (३१ मात्रा)

१ चैतन्यकी प्रगटता।

चेतन पुद्गल लक्षण देखो, दृष्टीवत् चेतन अमलान। पुद्गल नाना रस विकाश है, पुण्य पाप सुख दुखमय खान ॥ पूर्व कर्मके उदय कालमें, आप आप प्रगटे चित आन। मिलै नहीं कोऊ काहूसे, देख नित्य चेतन परमान ॥

२ ज्ञानीकी परिस्थिति।

ज्ञानी रहै ज्ञानमय घरमें, ज्यों भानू जगमें विख्यात। छोडै नहीं स्वभाव आपको, द्रव्य व्यवस्था देखो भ्रात ॥ ज्ञायक रस इक भिन्न आपही, ता कारण दीखै निज गात। चिदानंदमय ज्ञानी विचरै, ग्रहै नहीं पर गुण पर जात ॥

३ घटघटमें देव ।

देव विराजै घट घट माहीं, क्यों इत उत भूल्यो भटकात । सदा फिरैं नित खेद खिन्न है, ज्यों मृग जल बिन छोडै गात ॥ बचन अगोचर बचन प्रकाशैं, ज्ञायक रूप देख बिख्यात । नाम सिद्ध लख सिद्ध-स्वरूपी, देख देव नहिं पूछों बात ॥

४ आत्मस्वरूपकी निर्लेपता ।

आत्म-स्वरूप ज्ञान गुणधारी, चलै चाल उपयोग स्वभाव । स्वय-पर दोनों भाव प्रगट कर, नहीं ग्रहै पर गुण पर भाव ॥ द्रव्य स्वभाव प्रकट गुण देखो, चंद्र-प्रभासम वन्यो स्वभाव । नाहीं मिलै एक एकनसों, एक ज्ञान अर सर्व विभाव ॥

५ ज्ञानीका विलास ।

ज्ञानी रहै ज्ञानमंदिरमें, सम्यक् ध्वजा चढी अमलान । कर्मचक्रयुत क्रिया करै नित, रहै अलिप्त ज्ञान बल आन ॥ आपन स्थान जीव गहिलीनो, पुद्गल जड पुद्गलकी खान । आस्रव रुक्यो आपआपहितैं, संवर हुंकारै बलवान ॥ बंध रांड कर निर्जर चाली, मोक्ष स्वरूप देख भगवान । सुनौ सियाने सात तत्व ये, निज स्वरूप लख ज्ञानी मान ॥

६ अज्ञानीकी स्थिती ।

आपन भूलै पर गुण झूलै, आगम पढ पंडित अभि-

मान। दीन होय पर घर नित डोलै, दृष्टी हीन जगत जन जान। अशुभ छोड शुभमें नित राचै, पक्षग्राहि सुनवे नहिं कान। कर्म उदय वश क्रिया आचरै, कहै मोक्षमारग यह जान॥

७ त्यागीका निरूपण।

आत्मस्वरूप स्वभाव ज्ञान-बल, त्याग होय पर गुण पर जान। मरम लेश नहिं आश वास नहिं, ज्ञान विराग्य स्वभावी खान॥ कारण कारज भेद मेटकैं, देख स्वभाव प्रगट चित आन। भूल मेटकर शुद्ध देख इम, तब त्यागी मानो बुधवान॥

८ ज्ञानबिना त्याग नहीं।

ज्ञानकला बिन त्याग होत नहिं, कोटि उपाय करो जगमाय। भेदज्ञान बिन अंध होय कर, मूरख क्यों त्यागी कहलाय॥ भाव शुद्ध कर निज बलसेती, व्रती होय निज गुणके माय। टलमल नाहीं आप रूपको, शुद्ध बोधमय त्रिभुवनराय॥

९ आत्मस्वभावकी नित्यता।

आत्मस्वभाव अभाव होत नहिं, जड चेतन इक क्षेत्रहि बास। ज्ञान स्वभाव आप उज्ज्वल है, प्रगट ज्ञेयको करै विकास॥ आतम गुण सम्यक् दृग घनमें, मोहादिक नाहीं अवकाश। देख स्वभाव आप आपहिको, नहीं अभाव सदा शिव वास॥

१० सुबुद्धीका विलास ।

जबहि सुबुद्धि जगै घट अंतर, आतम-भाव दिपै चहुं ओर । नहीं विकल्प उठै निज धनमें, सोऽहं सोऽहं एकहि सोर ।। जिनवानी सुन जिन बिचार कर, भेदै मती नहीं किहं ठौर । कोटि ग्रंथ पढ सिद्ध होय नहिं, छिनमें सिद्ध देख निज ओर ।।

११ चेतन परिणति भिन्न ।

चेतन परिणति ज्ञानस्वरूपी, पुद्गल परिणति भिन्न बताय । रागादिक अज्ञान भाव यह, भिन्न देख आपन बल पाय ।। क्रोधादिक पुद्गल परिणति नित, उपजै बिनशै क्यों अपनाय । देख नित्य परिणति चेतनकी, ग्रहै नहीं पर गुण निजमाय ।।

१२ आत्माही देव ।

देख जिनेश्वर मूरति निजमें, ज्ञायक मय लख आपहि आप । देह देव नहिं, जड पुद्गल है, देव मानकर भूलै आप ।। आप स्वरूपी आप अरूपी, निरविकल्प, नहिं पर गुण छाप । शाश्वत रूप अचल प्रतिभासै, देव अन्य क्यों देखै आप ।।

१३ बाह्य त्याग निष्फल ।

परिग्रह त्याग चले बन माहीं, मोक्ष हेतु व्रत पालैं जाय । शुभपयोग संसार मूल है, अंध होय करनी चित ल्याय ।। उदय प्रमाण कर्म गति माहीं, बहो

जात अपनी सुध नाय । बलिहारी अज्ञान-भावकी, स्वात्मज्ञानबिन सूझै नाय ॥

१४ अज्ञानीको ताडना ।

दूर करो निज अज्ञपनो छिन, ज्ञान स्वरूप देख बिख्यात । सिद्ध सरूप स्वरूप विचारो, नहीं विकार, चेतना ज्ञात ॥ कोटि जन्म तप किये सिद्ध नहिं, पलट देख निज गुणके सात । भरम छोड निश्चित स्वभाव लख, नाहीं छिपो प्रगट दिन-रात ॥

१५ आत्मस्वरूपकी पूर्णता ।

आतम रूप पूर्ण बिख्याता, तिहूं काल ज्ञायक रस माय । आदि अंत उतपत विनाश नहिं, या कारण अविनाशि कहाय ॥ सब रस बिरस लगै निज रसमें, एक स्वरस पूरण विलसाय । रसिक होयकर रस आस्वादो, देख पूर्ण आतम जगमाय ॥

१६ धारावाही ज्ञान ।

धार देख इक ज्ञान सलिलकी, क्रोधादिक मल प्रगट लखाय । जिस स्वभाव तिस साथ रहै नित, यही विधी भाषी जिनराय ॥ व्याप्य रु व्यापक बनी व्यवस्था, नहीं मिटै काहू संग माय । रहै अटल निज स्थान ज्ञान यह, सिद्ध रूपको व्यक्त कराय ॥

१७ जगबासीकी बाह्य दृष्टि ।

चर्म दृष्टि वश फिरै अनादी, चर्म छोड कछु समुझै

नाय । जप तप कर बहु पुण्य कमाये, उदय करमके पाछे धाय ॥ भेदज्ञान बिन जाग्यो नाहीं, पतित भयो निज गुणसे आय । पर स्वरूपको निज स्वरूप गहि, मरकट सम देखो बिललाय ॥

१८ मिथ्यामतीकी व्यवस्था ।

मिथ्यामति वश पराधीन है, नहिं दीखै शाश्वत गुण ताय । औदायिक पुद्गल स्वभाव यह, द्रव्य भाव नो-कर्म सुहाय ॥ आप मानकर आप भूलकर, पडी फांस निज गल ही आय । यह अनादिकी चली व्यवस्था, देख सदा अज्ञानी माय ॥

१९ चेतन अर पुद्गल परिणामी ।

चेतन पुद्गल हैं परिणामी, भेदज्ञान बिन एक लखाय । है अनादि पर परणति निज गुण, अज्ञानी जानै कछु नाय ॥ जब निज परिणति निज गुण जानै, सहज त्याग है पर गुण जाय । जगै समाधी आपरूपकी, संसारी फिर क्यों कहलाय ॥

२० चेतनकी उदासीनता ।

चेतनरूप अरूप गुणातम, स्व पर चाल देखो सम काल । चमत्कार गुण सबमें व्यापक, रहै आपमें आप त्रिकाल ॥ राग द्वेष क्रोधादिक परिणति, देख सर्व पुद्गलमय जाल । उदासीन गति देख विकाशी, परख लेउ चेतनकी माल ॥

२१ सप्तभंग वाणीकी आवश्यक्ता।

नित्य स्वभाव भूल जगवासी, निज निज पक्ष होय असवार। वादविवाद ग्रस्थ परिणति है, गहि एकांत पक्ष चित धार॥ सप्तभंग वानी समझावै, तर्क सत्युत करै विचार। मुख्य गौन कर वाद मिटाकर, दरसावै निज रूप अपार॥

२२ नाममात्रमें मूढता।

नाम मात्र गह मारग भूले, गुण विचार चित नहीं सुहाय। भूल मिटै किम गुण विचार बिन, अंध-हृदय नित करत उपाय॥ भूल अनादी आगम गावै, स्वपर ज्ञान कर सुलभ उपाय। आप आप बल आप संभारै, तब जग भ्रमण सहज मिटजाय॥

२३ सम्यक्त्वकी नित्यता।

सम्यक्‌रूप सहज उदयागति, करै प्रकाश जीवकी जात। देख अंगरक्षक सम्यक् गुण, अंगभूत नित है विख्यात॥ सम्यग्ज्ञानी ज्ञान रूप लख, ग्रहै नहीं पर गुण उतपात। वीतराग विज्ञान स्वरूपहि, प्रगट दिखावै चेतन जात॥

२४ व्यवहार-नयकी व्यवस्था।

ज्ञेयाकार देख ज्ञायक गुण, कहै अवस्थाकर उपचार। मुख्य अवस्थाकी प्रतीति वश, चली अनादी नय व्यवहार॥ प्रगट छिपावै ज्ञायक गुण इक, देखो नय मानो

व्यवहार । नित्य पराश्रित परहि प्रकाशै, व्यक्त नहीं चेतन गुणसार ॥

२५ निश्चय-नयकी व्यवस्था ।

निश्चय नय सर्वांग प्रकाशै, एक चेतनारूप अपार । ज्ञेयाकार नाम ज्ञायक है, निश्चय कर निश्चित पद सार ॥ अचल रहै नित निज स्वभावमें, ज्ञायकमय घन आपन लार । पर विकल्पकों अवसर नाहीं, इम निश्चय-नय कहे पुकार ॥

२६ भ्रमबुद्धि व्यभिचार सम ।

भ्रमबुद्धी यह व्यभीचार सम, असत भावको करै सँभार । विविध शास्त्र अभ्यास करै नित, मरम न समझै मूढ विचार ॥ भरम मिटै बिन दीख पडै किम, आपस्वरूप सदा अविकार । शास्त्र पढो नित भरम मेटकर, तब सुबुद्धि बल होवै पार ॥

२७ मन विकल्पात्मक ।

मन चंचल परवश पररूपी, सदा विकल्पमई गुनवान । छनमें दुखी छनिक सुख रूपी, छन रागी क्रोधादिक जान ॥ कर्मयोग पुद्गल विकल्पमय, भिन्न करो आपन बल आन । निज स्वरूप निज सत्तामाहीं, शाश्वत ज्ञायक अचल महान ॥

२८ ज्ञानोपयोगकी शुद्धता ।

ज्ञानपयोग त्रिकाल एक रस, पर परणतिमें नहिं पर

होय । परणामी दो द्रव्य स्वभावी, एक भाष ता कारण होय ॥ जिस गुण तिसके साथ रहै नित, जड स्वभाव चेतन क्यों होय । ज्ञानपयोग शुद्ध अवलोकै, सिद्धरूप प्रगटै तब तोय ॥

२९ जागती ज्योति ।

मन वच काय जोगमें जागै, नहिं मूर्छित ज्ञायक गुण जान । ज्ञानामृत इक धार एकरस, चमत्कार जगमें अमलान ॥ जानन रूप एक आपहि गुण, जगै सदा नित है बलवान । पर विकल्पको ज्ञाता होकर, छानिक देख आपहि भगवान ॥

३० आपस्वरूप आपके पास ।

आप स्वरूप आप गुणमाहीं, तीन काल इक रूप-लखाय । जहां तहां इक आप प्रगट है, चमत्कार छवि देख सुहाय ॥ चेतन एक सदा अविकारी, जीव सिद्धको भेद मिटाय । लक्षण ज्ञायक एक स्वात्मरस, देख आप तू क्यों भरमाय ॥

३१ क्रियाकी अयोग्यता ।

विद्या सर्व सिद्ध करलीनी, कोटि युगांतर तपके ताप । आत्मस्वभाव शून्य अनुभवतैं, मोक्षमार्ग नहिं चीनै आप ॥ ग्रंथी भेद हुई नहिं घटमें, वृथा नग्न अर क्रिया-कलाप । भाव शुद्ध बिन अंध हृदय है, जाग उठै जब देखै आप ॥

३२ नयपक्ष-ग्राही ।

नय व्यवहार अशुद्ध मानकै, निश्चय शुद्ध पक्ष मत थाप । पक्षातीत स्वरूप भ्रष्टतैं, नहिं सम्यकता बकै प्रलाप ॥ नय दोनों हैं विकल्परूपी, नहीं विकल्प देख तो आप । है अभेद नित भेद सकै नहिं, ब्रह्मज्ञानको देख प्रताप ॥

३३ ज्ञायक गुणकी व्यापकता ।

आत्म स्वभाव सिद्ध छवि देखो, व्यापक व्याप्य आपमें आप । अन्यरूप तो होत नहीं है, देख व्यवस्था जिनकी छाप ॥ है अनंत गुण आतम माहीं, पर निमित्त गुण परके थाप । ज्ञायक गुण इक भिन्न प्रगट है, नहीं अंत जग व्यापक आप ॥

३४ सिद्धकी विभूति ।

ज्ञान विभूती अतुल सिद्ध है, निराकार चैतन्य विलास । दृष्टा एक आप आपहिकों, ज्ञेय रु ज्ञायक एक प्रकाश ॥ सिद्ध शुद्धको विकलप नाहीं, बन्यो स्वरूप अनादी खास । देव देव कर मारग भूलै, मेट भेद जब पूरै आश ॥

३५ आत्मस्वभावकी व्यापकता ।

आत्मस्वभाव धर्म विख्याता, अन्य सर्व पर धर्म विकार । दान शील व्रत पूजा सबही, रहो लीन मत देख संभार ॥ आपन भूल भूलि अज्ञानी, दीन रंक सब

करै पुकार । आप स्वभाव देख शिवरूपी, क्यों संसारी होय मंवार ॥

३६ आत्मज्ञानबिन भाव शुद्ध नाहीं ।

आत्मज्ञान बिन भाव शुद्ध नहिं, ता कारण है पापाचार । स्वांग धरै नित कर्म-जालको, आपन मान परै भवधार ॥ स्थिर स्वरूप बल देख छनिक जब, भेष अनेक नहीं मम लार । भाव सिद्ध सम शुद्ध प्रकाशै, स्वात्मरूप शोभै अविकार ॥

३७ अज्ञान भावकी उद्धता ।

जानै नहीं रूप निजनिजको, मोहन धूलि लई सिर धार । नितप्रति क्रिया करै बहुतेरी, मूर्छित भाव सदा अविचार ॥ उद्धत भाव महा हठग्राही, रागादिक युत सदा विकार । आत्मरूपके ज्ञानशून्यतैं, भाव शुद्ध नहिं होय अपार ॥

३८ गुरु उपदेशका महात्म्य ।

गुरु उपदेश धरै चितमाहीं, दिढ प्रतीति शंका न कराय । सतत विचार चलै घट अंतर, आत्मज्ञान बल आतम पाय ॥ केवल-पद चैतन्य-भाव नित, अधिक आप गुण प्रगट दिखाय । पर प्रवेशको अवसर नाहीं, बन्यो स्वरूप देख लह लाय ॥

३९ जगवासीकी मग्नता ।

जगवासीकी दौड देख सब, उदय कर्ममें चलैं

लुभाय । बिगडै कार्य खेद अति होवै, सुधरै चित आनंद कराय ॥ खेद खिन्न इम फिरै सदा नित, भरमभौंरीमें पड बिललाय । सुध नहिं आवै निज स्वरूपकी, ता कारण जगवास सुहाय ॥

४० मिथ्याबुद्धिकी मग्नता ।

आत्म-स्वभाव धर्म नहिं लखकैं, रहै मस्त परमें लपटाय । देहादिक उतपत विनाशमें, जनम मरण आपन कर भाय ॥ सुख दुख कर्म-जनित फलमाहीं, मिथ्यामति-वश नित ललचाय । चिदानंद निज स्वाद मिलै बिन, मूढबुद्धि नहिं सहज पलाय ॥

४१ ज्ञानीका विलास ।

ज्ञानदृष्टि बल आतम स्वादै, ज्ञायकमय ज्ञानी न अघाय । अवसर नाहीं पर गुण स्वादै, सहजरूप प्रगटी घटमाय ॥ बाद मेट सब कर्मजालकों, सहज शांत निज आश्रय पाय । आश वास भवजाल दूर कर, शिव-मारगमें पहुँचैं आय ॥

४२ शास्त्रादि ज्ञान नहीं ।

शास्त्र शब्द रस गंध स्पर्श रँग, यह नहिं ज्ञान कहैं जिनराय । धर्म अधर्म अकाश काल अर, अध्यवसानदि जड बतलाय ॥ जीवहि ज्ञान ज्ञान समदृष्टी, अंग पूर्व ज्ञानहि कहलाय । ज्ञानहि संयम ज्ञानहि दीक्षा, केवल मोक्ष ज्ञान जिन गाय ॥

४३ लेशमात्र भी रागी, अज्ञानी ।

रागादी अज्ञानभाव यह, लेशमात्र आतमके माय । द्वादशांगके पाठी होवै, तद्यपि अंध कहै जिन ताय ॥ ज्ञानस्वरूप आप गुण उज्ज्वल, भेद मेट आपन कर भाय । तेही ज्ञाता ज्ञानरूपको, द्वादशांग परसै नहिं ताय ॥

४४ ज्ञानीका ज्ञान टंकोत्कीर्ण ।

ज्ञाता ! टंकोत्कीर्ण ज्ञानमें, निजस्वभावकी महिमा जान । ज्ञान ज्ञेय इक आप आपही, निर्विकल्प ता कारण मान ॥ परिणति एक अनेक भाष है, नहीं मिलै निज-गुण परमान । साध्य रु साधक भेद मिटावै, प्रगट पूर्ण ज्ञायक बलवान ॥

४५ स्वभावमें अन्यका प्रवेश नाहीं ।

वस्तु स्वभाव भावके ज्ञाता, स्थिरता गुण प्रगटी तिन माय । तीन कालमें नहीं चलाचल, ज्ञानस्वरूप अचल बल पाय ॥ खंड खंड परिणमन देखिये, पर स्वरूप पर गुण उपजाय । आप अखंड खंड क्यों होवै, देख स्वभाव आप गुण माय ॥

४६ ब्रह्मघाती पातकी ।

आत्मरूपके धरम ज्ञानबिन, नहिं जानैं दृष्टाकी जात । सत्यासत्य विचार रहित है, मिथ्यादृष्टि करै उतपात ॥ गहल रहै अज्ञान भावमें, करनी चित ठानें दिनरात । भेदज्ञानके शून्यपनातैं, पापी करै ब्रह्मको घात ॥

४७ आत्मप्राप्तिकी सुलभता ।

चाल अनादी छोड देख अब, अगत-ईश घटमाहिं प्रकाश । आप स्वभाव छनिक अवलोकौ, होय पडोसी कर अभ्यास ॥ निज स्वभाव निज पास रहैं नित, सुलभ प्राप्त ता कारण जास । पलट देख अब गुरु प्रसाद बल, ज्ञान अंग दीखै निज खास ॥

४८ निर्विकल्प गुणकी प्रगटता ।

आपा परको भेद होत ही, सुमती जगै आप बल पाय । नहीं विकल्प आपमें परको, निर्विकल्प ता कारण गाय ॥ पर निमित्तके मुख्य भावतैं नाम अनेक कहे जिनराय । छोड नामका भरम जाल सब, सहजमूर्ति प्रगटै छिन माय ॥

४९ गुरुका खेदयुक्त बचन ।

वस्तूकी मरयाद व्यक्त जब, सिद्ध होय ज्ञानी चित माय । पुद्गल कर्म नृत्य अवलोकै, कर्त्ता करम क्रिया निज नाय । अज्ञानी तद्यपी मोहवश, आपन मान नचै विलसाय । कहै गुरू अति खेद खिन्न है, मोह नचै तू नच मत भाय ॥

५० भेषका त्याग ।

चौरासी लख योनिमाहिं मैं, कोटि कोटि बहु भेष नचाय । अजहूं छोड छोड अनरीती, लुब्ध होय मत भेष लुभाय । भेष स्वभाव नाहिं है तेरो, कर्म उदय

गति कर्म बनाय। तू चैतन्य ज्ञान गुण मंडित, शाश्वत रूप कहैं जिनराय॥

५१ सम्यक्त्वकी महिमा।

सम्यक् सलिल स्रोत घट अंतर, चली आप अपने बल पाय। कर्म धूल तो बहै आपतैं, सलिल प्रवाह प्रगट गुण माय॥ कर्म-जालके दूर करनको, विविध उपाय करो मत भाय। सम्यक् रूप देख निज निजको, सर्व सिद्ध है सुलभ उपाय॥

५२ शब्दातीत ज्ञान।

आत्मस्वभाव ज्ञान यद्यपि है, नहीं विकल्प बोधमय जान। दौड धाप सब शब्दजाल है, शब्द ज्ञान नहिं ज्ञानहि ज्ञान॥ निमित शब्दको जगत जीव सब, अंध मोह सम ज्ञानहि मान। लखे न दृष्टा आप रूपको, शब्दातीत लोक परमान॥

५३ मूलतैं कर्मकी भिन्नता।

मोक्ष हेतु उल्लासी जनकों, कारण कार्य ज्ञान स्वयमेव। पुण्य पाप मोहादिक निजतैं, मूल उखाड कहैं जिन देव॥ समता भाव आप सरवांगी, नहिं छोडैं निज कुलकी टेव। मोक्षस्वरूप देख सम्यक् बल, बन्यो आप आपनही देव॥

५४ ज्ञान स्वभावकी अभेदता।

ज्ञानभाव जब प्रगट होत है, पर निमित्तको भेद मिटाय।

आप अखंड आप गुण पूरण, भिन्न आप गुण आप बताय ॥ उपादान कारण जिस तिसका, पर निमित्त पर सदा रहाय । सिद्धरूपके सिद्धभावमें, भेद करै मत सहज लखाय ॥

५५ अज्ञानका लापता ।

भेदज्ञानके उदय होतही, अध भाव तो प्रगट पलाय । द्रव्य भाव नोकर्म आपतें, पडै दीख पुद्गलके माय ॥ ज्ञान स्वभाव क्रिया जानन है, नहिं पुद्गलमें क्यों भरमाय । ज्ञानी जीव ज्ञान आस्वादी, रहै सदा निज रूप लुभाय ॥

५६ आत्मध्यानकी प्रगटता ।

आत्मज्ञान बिन आत्मध्यान नहि, जहां ज्ञान तहँ ध्यान प्रमान । ज्ञानशून्य है ध्यान करत है, शुभ-पयोग जानो बुधवान ॥ सम्यक् निज गुण निज गहि-लीनो, शुधपयोग जागै बलवान । शुभ अर अशुभ योग तब नाहीं, देख स्वभावी आतमध्यान ॥

५७ जातीका परिज्ञान ।

निज जातीके ज्ञानशून्यतें, पर जातीमें अनादि रुलें । पापमती दुर्बुद्धि त्यागिकै, निज घर बैठ स्वभाव मिलें ॥ चेतन अंक तुही शिवरूपी, जान रंकपन छोड चलें । कर्त्ता कर्म क्रिया निजहीकों, ज्ञान नेत्र बल देख भले ॥

५८ संतकी विभूति।

संतकि दृष्टि जगी निज धनमें, पर गुण निज गुण सहज दिखायँ। सत्‌बुद्धी सत् द्रव्य विलोकें, असत् भावको परसैं नायँ॥ जड पुद्‌गलमें राग नहीं है, चेतन हू रागी न कहाय। राग द्वेष अज्ञान भाव हैं, ज्ञानविभूति संत चित मायँ॥

५९ शील गुणकी उदासीनता।

आत्मस्वभाव ज्ञान गुण देखो, प्रगट उदय स्वय-परके मायँ। परको ग्रहण करैं नहिं कबहूं, उदासीन गुण शीलहि मायँ॥ शब्द प्रवेश होय नहिं जिसमें, दृष्टा खोज देख चित मायँ। चमत्कार सब द्रव्य व्यव-स्था, ज्ञायक चेतन क्यों भरमायँ॥

६० उपयोगकी विरागता।

देख देख अनरीत जगत्‌की, पर निमित्त रागी उप-योग। ज्ञान स्वभाव ज्ञानतैं च्युत हो, सदा अंध परि-णति पर योग॥ कर विचार उपयोग स्वभाविक, नहीं अनादी राग वियोग। शुद्धाशुद्ध विकल्प छोड लख, राग रहित नित शुद्धुपयोग॥

६१ सर्वज्ञकी प्रगटता।

सर्वज्ञ देवकी चमत्कारता, देख प्रगट गुण क्यों भर-माय। आप स्वरूप सहज परतापी, प्रगट उदय अनुपम गुण मायँ॥ विना स्वभाव ज्ञान जगमाहीं, भ्रांत भाव

बश सूझै नायँ । देख स्वभावी देव अरूपी, घट व्यापक जिनवाणी गाय ॥

६२ नय विकल्पका त्याग ।

आत्मज्ञान बिन शुद्ध बोध नहिं, पक्ष ग्राह नयमें लपटायँ । नयातीत आतम नित शोभै, पक्ष दृष्टि बश दीखै नायँ ॥ ग्रहण करो नयको विवेकयुत, सत्यासत्य भेद प्रगटायँ । आत्मस्वरूप अभेद ग्रहण है । नय विकल्प सहजहि मिटजायँ ॥

६३ पारखीकी प्रशंसा ।

आत्मरूपके प्रगट होत ही, सहज दृष्टि निज माहिं फिरै । ज्ञायकमय सर्वांग शुद्ध पद, सोऽहं सोऽहं भाव खिरै ॥ बानी मन बुद्धी विकल्पमय, कर्म हेतु यह नाम धरैं । पारखि होय सुलभ है ताकों, बिन पारखि बहु-क्लेश करैं ॥

६४ भेदज्ञानका प्रसाद ।

भेदज्ञानहीके प्रसादतैं, जडसे मिथ्याभाव पलायँ । आप माहिं स्थिरता गुण जागै, सहज भाव ज्ञायक बल पाय ॥ समता रसकी लहर उठै नित, रागादिककी सत्ता नायँ । अंगभूत गुण अंग दिखावै, प्रगट मोक्षका सहज उपाय ॥

६५ जातिका अभिमान ।

आत्मदेव भगवान बिराजैं, निर्विकार निरलेप अपार ।

खुलैं ज्ञान पट दीसत क्षणमें, चिदानंद गुण अगम उदार ॥ जातीका अभिमान धार नित, कूदकूद बहु करैं पुकार। सर्व भक्ष है जगमें बिचरैं, वृत्त राक्षसी पापाचार ॥

६६ गुरु वचनोंका फल।

कर्म रोग बश है जगवासी, धाय धाय नित क्रिया करैं। शुभ अर अशुभ योग औदायिक, अंध होय भव कूप परैं ॥ ज्ञानमयी उपयोग स्वभावी, नित्यनिरंजन रूप धरैं। गुरु-वचनोंकी दृढ प्रतीतिसे, सहज सिद्ध पद प्राप्त करैं ॥

६७ सावधान है देखो।

देख स्वभाव आप निज निजको, नहीं अन्य तो सम जग मायँ। चमत्कार परतक्ष चिदातम, भास रहो नित स्वय-पर मायँ ॥ निज स्वरूपको कर्त्ता निजही, पर स्वरूप कर्त्ता न लखाय ॥ सावधान है देख सदा इक, ज्ञायक रस आपहि बरसाय ॥

६८ काललब्धिकी मुख्यता।

दृष्टी हीन अंध अज्ञानी, गुण विचारमें रहै उदास। काललब्धिके उदयकाल बिन, नहीं उपाय करै बहु आस ॥ समय होय जब भेदज्ञानको, गुरु वचनोंमें करै हुलास ॥ ज्ञानपुंज निज रूप पायकैं, जगै समाधी सहज उदास ॥

६९ भेदज्ञानकी प्रधानता ।

आतमज्ञान सिद्ध शिवरूपी, सदा ज्ञानमय ज्ञान प्रकाश । पर गुण भास होय निजहीतैं, ज्ञानरूपमें जगत् विकाश ॥ भेदज्ञानके शून्यपनातैं, जड पुद्गलका एक विलास । ज्ञानरूपके प्रगट होतही, नहिं पुद्गल-गुणमें निज बास ॥

७० कर्मजालतैं उदासीनता ।

ज्ञाताने निज भाव.सिद्ध सम, देखो निज बल कर अभ्यास । भेद रह्यो नहिं सिद्ध होनको, निर्विकल्प निजरूप विकाश ॥ त्याग ग्रहणकी विधी नहीं है, कर्म-जालतैं रहै उदास । नहीं स्वभाव बाह्य निकसनको, ब्रह्म ज्ञानका देख विलास ॥

७१ जिसकी परणति तिसमें ।

सिद्ध अनादि जीव चेतनमय, ज्ञान स्वभाव आप उद्योत । ज्ञेयबिंब प्रतिभास होत है, ज्ञायक गुणकी शोभा होत ॥ है विकार पुद्गलकी परणति, जिस परणति तिसकी नित होत । ज्ञायकमय स्वच्छंद जीव गुण, टंकोत्कीर्ण ज्ञानमय स्रोत ॥

७२ द्रव्यकी व्यवस्था ।

ज्ञानुपयोग आत्मगुण देखो, सिद्धभाव नित सिद्ध बतायँ । परको करैं न भोगैं कबहूं, जानन क्रिया ज्ञान गुण मायँ ॥ द्रव्य भावकी नित्य व्यवस्था, द्रव्य दृष्टितैं

नित्य लखाय। है परबाय परहि गुणसेती, देख जान अब क्यों भरमाय॥

७३ षट्द्रव्योंकी व्यवस्था।

षट् द्रव्योंकी देख व्यवस्था, निज निज गुणमें निजकी जात। ज्ञायक गुण इक देख जीवका, अंध कूप सम पांच लखात॥ ज्ञान स्वरूपी सिद्ध आतमा, कैसो बन्यो स्वभावी ज्ञात। अचल अखंड एक पुरुषोत्तम, भेद मेट लख स्वयंप्रभात॥

७४ वैभाविक गुणकी नित्यता।

आत्म अनंत ज्ञान गुण धारी, है स्वभाव उपजीवी जान। कर्म निमित जो भाव होत है, प्रतिजीवी गुण ताको नाम॥ वैभाविक गुण नित्य स्वाभावी, नहीं बंध कारण सुन कान। सत् स्वरूप वैभाविक गुणमें, भेदज्ञान बिन बंध प्रमान॥

७५ वैभाविक गुण सिद्धोंमें।

वैभाविक शक्तीकी परिणति, भेदज्ञानतैं शुद्ध लखाय।
बंध नहीं स्वाभाविक परिणति, देख सदा सिद्धोंके मायँ।
पर निमित्त शक्तीकी परणति, वैभाविक ता नाम कहाय।
मूल भाव तो पलटै नाहीं, भेद दूर कर एक लखाय॥

७६ अवस्थाकी मुख्यतासे दो नाम।

वैभाविक तो शक्ति एक है, स्वात्म स्वरूप ज्ञान बल मायँ। स्वयभाविक अर वैभाविकता, नाम हुए दो पर

सँग पाय ॥ देख अवस्था भेद मुख्यसे, दो शक्ती दो नाम धराय । पर सँग भेद दूर कर देखो, शुद्ध चेतना सिद्ध बताय ॥

७७ अनुभव प्रसाद ।

भूत भविष्यत वर्तमानमें, मोक्ष होय अनुभव परसाद । पर विकल्पको मूल नाशकर, जग्यो स्वरूप नाहिं परमाद ॥ रसिक होय जो ज्ञायक रसमें, लिप्त होय नहिं पर रागादि । आपरूप आपही प्रकाशक, द्रव्य व्यवस्था प्रगट अनादि ॥

७८ सम्यग्दृष्टी ।

बुद्धि अबुद्धि पूर्व रागादिक, मिथ्यादृष्टी ग्रहे अनादि । स्वात्मभूत गुण प्रगट होतही, स्वाभाविकमें नहिं रागादि ॥ बुद्धि पूर्व रागादि होय तदि, समदृष्टीका देख प्रसाद । पूर्व कर्मकी निर्जर होवै, सहज देख क्यों करै विवाद ॥

७९ घट-मंदिरमें देव ।

जगवासी नित भ्रमबुद्धी बश, ढूंढ रहे आतम भगवान । घटमंदिरमें देव विराजे, अंदर बाहिर एक समान ॥ रत्न हाथमें रत्न प्रकाशै, आप रूपको निजबल जान । गुण विचार कर देख देख अब, होय सिद्ध निज रूप महान ॥

८० देह जगत् ।

द्रव्य भाव नोकर्म भिन्नकर, निमित्त नैमित्तिक कर· दूर । बुद्धी मन विचार सब त्यागो, देख सहज ज्ञायक ज्ञायक गुणसूर ॥ लिप्त करो मति ज्ञायक गुणमें, छोड विकल्प अरे मन क्रूर । सहज उदय नित ज्ञायक-मय धन, जगत् देहमें नित भरपूर ॥

८१ मोहको मूलसे तोड ।

तीन शतक तैंतालिस राजू, घरघर भेष कियो बहु खेल । अजहू समझ समझरे मूरख, जडसे तोड मोहकी बेल ॥ आप स्वभाव भूल निशदिन तू, नहिं कीनो आतमसे मेल । जाग सहज अब निज गुण माहीं, होय सिद्ध नहिं होवै फेल ॥

८२ चेतन अंक ।

आतम सिद्ध अनादि ज्ञानमय, देख देख आतम भग-वान । आप स्वभाव आप पासहि नित, चेतन अंक सदा गुण खान ॥ पर विकल्पके जाल छोड अब, निज स्वभाव निज देख प्रमान । सावधान है अनुभव लेवो, देहादिकमें क्यों अभिमान ॥

८३ आचारांगादि ज्ञान उपचारसे ।

आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, आश्रय ज्ञान कहे उप-चार । जीवादिक नव पदार्थ दर्शन, आश्रय दर्शनके

उपचार ॥ षट् कायोंकी रक्षा चारित, आश्रय चारितसे उपचार । ज्ञान दर्श चारित आतम गुण, अंमभूत नाहीं उपचार ॥

८४ अखंड स्वभाव ।

ज्ञानमात्र आतम स्वरूप लख, ज्ञाता ज्ञायक रस भरपूर । है स्वभाव ज्ञाताको ज्ञायक, ता कारण होवै नहिं दूर ॥ आत्म स्वभाव ज्ञान पहिचानो, भिदै नहीं इक अविचल सूर । ज्ञानी लखै अखंड आपको, चेतन अंक एक रस पूर ॥

८५ भेदमेंही अभेद ।

मति श्रुति आदिक ज्ञान पाँच अर, उपशमादिमें देखो एक । राग द्वेष अर वर्णादिकमें, देख नित्य ज्ञायक तो एक ॥ अर सामान्य विशेष भेद है, नय निक्षेपादिकमें एक । सर्व भेदमें ज्ञायक गुण तो, देख नित्य आतम रस एक ॥

८६ सत्तामें ही सत्यता ।

सत्ता मात्र सर्व भावनमें, साध आतम गुण दीखै एक । पर संबंध विकल्प होत है, तद्यपि ज्ञायकमय गुण एक ॥ स्वय-पर भेद ज्ञान शक्ती बल, ज्ञान स्वभाव मिलै नित एक । सूक्षम भाव धार समरसकी, संत हृदयमें प्रगटी एक ॥

८७ महाव्रतादि स्यात् उपादेय।

तपश्चरण अर महाव्रतादी, स्यात् ग्रहण जिनवानी गाय। शुभुपयोगमें बंध होयकै, मोक्ष पंथ साधै मति भाय॥ क्रिया मोक्षका अंग नहीं है, औदायिक है क्यों भरमाय॥ मोक्षरूप साक्षात् ज्ञान पद, भेष सभी लख आपन माय॥

८८ स्वरूपाचरण चारित्र।

भेदज्ञानके प्रगट होत ही, आप आप अज्ञान पलाय। शुद्धुपयोग ज्ञान कारणतैं, कार्य सिद्ध निज रूप लखाय॥ क्रिया ज्ञानकी ज्ञानहि माहीं, सहज होय पर नहीं सहाय। प्रगटी क्रिया स्वरूप दिखावै, नाम स्वरूपा-चरण कहाय॥

८९ बंधका हेतु पर नाहीं।

अध्यवसान भाव पर सेती, ता कारण पर त्याग कहाय। बंध हेतु तद्यपि पर नाहीं, कारण अज्ञपना सुन भाय॥ दर्श ज्ञान चारितकी परिणति, बंध हेतु अज्ञान लखाय। भेदज्ञानके प्रगट होत ही, सम्यक् तीनों नाम धराय॥

९० ज्ञानकी आठ रूप परिणति।

स्वय-पर भाव प्रगट अनुभव बिन, निश्चित भावहि अध्यवसाय। मति बुद्धी परिणाम विज्ञप्ति, चित् विज्ञान भाव व्यवसाय॥ एक अर्थ उद्योतक सबही,

भेदज्ञान बिन चेतन मायँ । नाम होय पर कारण सेती, कारण टार अखंड दिखाय ॥

९१ सर्व व्यवहारका त्याग ।

अन्य सर्वमें आत्मबुद्धि जन, अध्यवसान मूलतें त्याग । पर आश्रित व्यवहार छोड सब, देख स्वभावी आतम बाग ॥ निश्चित घरमें बैठ देख अब, ज्ञायक मोक्ष स्वरूपी आग । सहजहि भस्म कर्म सब होवैं, जिन वच मान आपही जाग ॥

९२ मोक्षका हेतु आत्माका परिणाम ।

द्रव्य स्वभाव मायँ साधन कर, ठोक ठोक जिन-वचन कहैं । आतम मोक्ष हेतु आतमही, व्रत तप पुद्गल लार रहैं । ज्ञानकि परिणति ज्ञानहि माहीं, पर स्वरूपको नाहिं ग्रहै । मोक्ष स्वरूप आपको आपहि, परिणति ज्ञानमें ज्ञान बहै ॥

९३ ज्ञानकी ज्ञानीसे एकमेकता ।

निश्चय नय प्रमाण जब होवे, भेदज्ञान शक्ती बल पाय । ज्ञानी ज्ञान स्वभाव लखै नित, एकमेक नहिं भेद दिखाय ॥ सुवरण तप्यो प्रचंड अग्निमें, कनक रूप कहुं छोडै नाय । यह प्रमाण ज्ञानीको जानो, कर्म ग्रहै नहिं, नित बिलसाय ॥

९४ शक्तिकी परिणति ।

शक्ती नाम ज्ञान परिणतिको, ग्रंथमायँ उपयोग

बखान । स्वय-पर चाल चलै नितप्रतिही, भेद-ज्ञान बिन भूल्यो जान ॥ पर निमित्त पर परिणति दीखै, द्रव्य स्वभाव यही विधि मान । रहै समर्थ आप गुण माहीं, उदासीन केवलि सम जान ॥

९५ ज्ञान जगत्गुरु ।

पर संबंध अशुद्ध देखिये, मूल द्रव्य तो नहिं पल-टाय । द्रव्य स्वभाव ज्ञान अनुभव बिन, मोहादिक पर आपन मायँ ॥ ज्ञान जगत्गुरु आत्म बिराजै, द्वैत भावको विकलप नायँ । बन्यो अनादी सिद्ध स्वरूपी, ज्ञायक मय गुण प्रगट बताय ॥

९६ अज्ञानीका नृत्य ।

अज्ञानी अज्ञान अनादी, भूल आपको जग अप-नाय । वर्णादिकका नृत्य देखकर, नचै आप आपन विसराय ॥ यद्यपि एकमेक नित भासै, लक्षण सिद्ध ज्ञान जग मायँ । परम श्रेष्ठ निज सिद्ध रूपको, प्रगट करै निज गुण लख भाय ॥

९७ ज्ञान वैराग्य शक्ति ।

शक्ति अचिन्त ज्ञान वैरागी, सहज होय ज्ञानीके मायँ । प्रगटै आपहि भेदज्ञान बल, देख समर्थ अतुल जग मायँ ॥ इंद्रिय-जनित भोग नित भोगै, तद्यपि कर्त्ता नहीं कहाय । स्वय स्वरूप शक्ती बल विचरै, नहीं मोक्षकी इच्छा ताय ॥

९८ जीवकी सिद्ध अवस्था ।

एक जीव नव तत्व मायँ है, चमत्कार चेतनहि विकास । कर्म-योगतें धरी अवस्था, बंध नाम तिस कारण जास । देख अवस्था जिससे उपजी, रहै नित्य ताके संग खास । समदृष्टी बल सम्यक् देखो, जीव अवस्था सिद्ध प्रकाश ॥

९९ व्यभिचारता नाहीं ।

निश्चय नय आश्रय प्रतापसे, व्यभीचारता सहज पलाय । आप रूपके प्रगट होतही, आप आप पर भिन्न दिखाय ॥ ज्ञेयाकार पूर्ण ज्ञायक गुण, लख अनादि निर्लेप सुहाय । उतपत नाहीं बिनशत नाहीं, आप रूप लख क्यों भरमाय ॥

१०० निर्विकल्प नाम ।

सदा काल इक परिणति चेतन, भरो ज्ञान रस देखो ताय । लवण क्षार सम एक रूप नित, क्यों नहिं मानो, पाप पलाय ॥ स्वय-पर विकलप भेद मेट जब, निर्विकल्प तब प्रगट लखाय । प्रति छन भाषै, छिन नहिं दीसै, केवल पद नित व्यक्त कराय ॥

१०१ ज्ञानक्रिया ।

ज्ञानक्रिया अनुभूति नाम है, ज्ञान आत्म एकहि सुन कान । इंद्रियवश नित पराधीन है, ज्ञेय ज्ञान एकहि अज्ञान ॥ ज्ञानी ज्ञान क्रिया आश्रित है, जडसे

त्याग करै बुधवान । जबी समाधी नित्य भावकी, ज्ञान क्रिया आपहि बलवान ॥

१०२ ज्ञानक्रियामें सम्यक्ता ।

अनुभव सम्यक् होय नित्य जब, ज्ञानक्रिया सम्यक् है जाय । बद्ध भावको लेश नहीं है, द्रव्य स्वभाव अचल गुण मायँ ॥ भास अवस्था द्रव्य भावमें, कर अभ्यास सहज सुरझाय । चेतन धन अनुपम इक जगमें, बंध नहीं देखो जिन गाय ॥

१०३ सम्यक्तका वृथा अभिमान ।

अज्ञानीको भेद नहीं है, मिश्रित भाव ज्ञान गुण जान । भेदज्ञान तीक्षण सुबुद्धि बल, ज्ञान क्रिया निज हुई प्रमान ॥ ज्ञान क्रियाके पलट जातही, सम्यक् होवे दर्शन ज्ञान । जाने बिन श्रद्धा किस गुणकी, वृथा छोड सम्यक अभिमान ॥

१०४ ज्ञानीकी ज्ञानक्रिया ।

आद्यनंत अविनेश्वर आतम, चेतन चिह्न सदा अम-लान ॥ तीन पना परयाय दृष्टिसे, तद्यपि एक पना बलवान ॥ ज्ञान क्रिया ज्ञानीका निजगुण, है तादात्म्य-भूत मय जान । ता कारण ज्ञानी निज गुणसे, छूटै नहीं स्वभावी ज्ञान ॥

१०५ वस्तु स्वभाव नित्य अविकारी ।

सूर्यकांत मणि सूर्य आप नहिं, निमित्त सूर्य अग्नी सम

होय । वस्तु स्वभाव नित्य अविकारी, जिस निमित्त तिसका है सोय ॥ आतम ज्ञायक है अखंड निज, पर संबंध भेद नहिं कोय । मरमी बिन मारग नित भूलैं, परै फंदमें आपो खोय ॥

१०६ परिणाम परिणमनकी एकता ।

यह परिणाम प्रगट जो दीखै, परिणामी आश्रयके जान । आश्रयभूत होय जो जाका, उसका कर्त्ता वोही मान ॥ अन्य अन्यका कर्त्ता नाहीं, यह निश्चय सिद्धांत प्रमान । परिणामी परिणाम एककी, जगै सुमति तब होवै ज्ञान ॥

१०७ पौद्गलिक ज्ञानकी अनित्यता ।

इन्द्रिय-जनित ज्ञान पुद्गल है, आतमज्ञान चेतना खान । पर निमित्त परहीकी सम्पति, कहैं जिनेन्द्र सुनो बुधवान ॥ बंध हेतु मूर्च्छित विकल्पमय, नहीं नित्यता करो प्रमान । मृगी रोग सम महिमा जाकी, देख सदा यह पुद्गल ज्ञान ॥

१०८ ध्यानकी निर्दोषता ।

निज स्वरूपमें स्थिरता कारण, परसे ज्ञान खेंच मत भाय । ज्ञानाकार ज्ञान होनेको, खेद करै क्यों ? बिगडे नायँ ॥ वस्तु स्वरूप स्वभाव ज्ञान बल, सहजहि एकाकार दिखाय । रहै अटल नित नहीं चलाचल, तीन कालही अपने मायँ ॥

१०९ सिद्ध-गुणकी प्रगटता ।

मदावलिप्त कपोल छंद (चाल)

चमत्कार चैतन्य, देव नित ज्ञान झरै है ।
ज्ञान भावकी खान, आपतैं नाहिं टरै है ॥
समदृष्टी बल देख, छवी आपहि नित भासत ।
स्व-पर बोध नित होत, वही गुण सिद्ध कहावत ॥

११० गुरुचरणाश्रयका फल ।

चरणाश्रय 'श्रीवीर' पाय कछु भक्ति जगी है ।
ता प्रसाद फल पाय, आत्म अनुभूति लिखी है ॥
हंस स्वभाव समान, ग्रहो गुण, मेरी विनती ।
नंद ब्रह्म अमलान, देख निज आतम शक्ती ॥

दोहा ।

मार्ग वद्य त्रीयोदशी, बुद्धवार दिन जान ।
इकुबीस चौरासिमें, पूरन हुई प्रमान ॥

उपादान-निमित्त-प्रश्नोत्तर ।

दोहा ।

नित्य निरंजन देव जिन, जगतमाहिं विलसंत ।
भेद दृष्टि मल दूर कर, बंदों सिद्ध महंत ॥ १ ॥
उपादान अर निमितकी, तर्क चित्तमें आन ।
प्रश्नोत्तर रचते हुए, मिटै भरमकी खान ॥ २ ॥

उपादान ।

उपादान निज शक्ति है, है निज मूल स्वभाव ।
अर निमित्त पर योग है, लग्यो अनादी भाव ॥३॥

निमित्त ।

निमित उठो हुंकारके, जगमें मैं विख्यात ।
तेरेको जाने नहीं, उपादान कहा बात ॥ ४ ॥

उपादान ।

उपादान बोलो तबै, रे निमित्त मतिहीन ।
सम्यग्ज्ञानी जीव ही, जानै मेरी चीन ॥ ५ ॥

निमित्त ।

जगवासी सबही कहै, बिना निमित नहिं होय ।
देखो घर घर जायकै, तुमको पूछै कोय ॥ ६ ॥

उपादान ।

उपादान बिन, निमितसे, सिद्ध होय नहिं काज ।
अंधे जगवासी सबै, जानैं श्रीजिनराज ॥ ७ ॥

निमित्त ।

देव शास्त्र अर गुरु यती, ग्रंथ माहिं परमान ।
यह निमित्त बल पायकैं, शिवपुर करै पयान ॥ ८ ॥

उपादान ।

दीक्षा शिक्षा जीवको, मिलै अनंती बार ।
उपादान सुलटे बिना, देख देख संसार ॥ ९ ॥

निमित्त ।

निकट भव्य जो जीव यह, निमित साधुके पास ।
क्षायक सम्यक् होत है, देखो निमित उपाय ॥१०॥

उपादान ।

साधू अर जिनराजके, रहै पास बहु जीव ।
सुलटो जाको निज धनी, क्षायक सोही जीव ॥११॥

निमित्त ।

हिंसा पापादिक किये, नरकादिक दुख पाय ।
यह निमित्त बल देखिये, क्यों नहिं मानो जाय १२

उपादान ।

हिंसामय उपयोग लख, नहीं अन्नकी जांच ।
तेह नरकमें जात हैं, मुनि नहिं जायँ कदाच ॥१३॥

निमित्त ।

दया दान व्रत तप किये, जगवासी सुख पाय ।
जो निमित्तही झूठ है, क्यों मानै सब भाय ॥१४॥

उपादान ।

दया दान पूजादि सब, भलो जगत् सुखकार ।
सम्यक् अनुभव हेतु बिन, सबही बंध विचार ॥१५॥

निमित्त ।

जगमें बात प्रसिद्ध है, देखो सोच-विचार ।
निमित नहीं नर जन्मको, जावै नहिं भव पार ॥१६॥

उपादान ।

देहबुद्धि ही जीवकी, शिवपुर रोकनहार ।
उपादान स्वय-शक्ति-बल, मुक्तिलोक है यार ॥१७॥

निमित्त ।

जगवासी सब जीवमें, उपादान है भाय ।
क्यों नहिं जावै मुक्तिमें, बिन निमित्तके पाय ॥१८॥

उपादान ।

उपादान सुलटो नहीं, है अनादि इस रूप ।
सुलटतही निज पथ गहै, सिद्धलोक शिवरूप ॥१९॥

निमित्त ।

बिन निमित्त उपयोग यह, उलटो कैसी बात ।
है अयोग्य यह बात तुम, उपादान सुन भ्रात ॥२०॥

उपादान ।

उपादान बोलो तबै, मोपै कही न जाय ।
ऐसी ही वाणी खिरी, जानैं त्रिभुवनराय ॥ २१ ॥

निमित्त ।

निमित कहे तब सत्य है, जैसी कहि जिनराज ।
हम तुम संग अनादिके, कौन रंक ? को राज ? ॥२२॥

उपादान ।

उपादान कहते हुए, बलीराज हम जान ।
उपजत बिनशत निमित है, काहेतें बलवान ॥२३॥

निमित्त ।

उपादान तुम बल धरौ, फिर क्यों लेत अहार ।
देख निमित आहारके, जीवै सब संसार ॥ २४ ॥

उपादान ।

जो निमित्तके योगतें, जीवत है जग जीव ।
रहते क्यों नहिं जीव सब, देखो मरण सदीव ॥२५॥

निमित्त ।

चंद्र सूर्य मणि अग्निके, निमित लखै यह नैन ।
अंधकारमें अंध है, उपादान सुन बैन ॥ २६ ॥

उपादान ।

चंद्र सूर्य मणि अग्निसे, फैले सत्य प्रकाश ।
नयन बिना कुछ ना लखै, सुनौ अंधके पास ॥२७॥

निमित्त ।

निमित कहै तुम मान लो, उपादान इक बात ।
मेरो बल सब पाइके, मोक्षपुरीमें जात ॥ २८ ॥

उपादान ।

उपादान कहते हुए, अरे निमित मति-हीन ।
तेरो सँग जे तजत है, ते शिव-मारग लीन ॥२९॥

निमित्त ।

निमित कहै मोको तजै, कैसे शिवपुर जात ।
महाव्रतादी प्रगट हैं, और क्रिया विख्यात ॥३०॥

उपादान ।

पंच महाव्रत योग त्रय, निमित सर्व व्यवहार ।
पर निमित्त सब दूरकर, फिर पहुँचै भवपार ॥३१॥

निमित्त ।

निमित कहै अति वेगसों, उपादान सुन बात ।
तीनलोक-पति होत है, मो प्रसाद विख्यात ॥३२॥

उपादान ।

चहुँ गति माहीं भ्रमत है, तो प्रसाद जग जीव ।
दुखी होय भव-भव फिरैं, निमित दुःखकी नींव ३३

निमित्त ।

निमित कहै सब दुख सहै, सो हमरे परसाद ।
सुखी कौन तब होत है, सो किनके परसाद ॥३४॥

उपादान ।

उपदानकी बात सुन, अरे निमित तू दीन ।
अविनाशी निज मोक्ष-सुख, पर निमित्त मतिहीन ३५

निमित्त ।

शाश्वत् सुख घट घट बसै, क्यों भोगत फिर नाहिं ।
पुण्य उदयके योग बिन, रंक होय भटकाय ॥३६॥

उपादान ।

शुभ निमित्त इस जीवको, मिल्यो अनंती बार ।
स्वात्मभूति सम्यक् बिना, फिर्यो अनादि गंवार ३७

निमित्त ।

स्वात्मभूतिके होत ही, त्वरित मोक्ष नहिं होय ।
ध्यान निमित बल पाइकै, सिद्धरूप फिर होय ॥३८॥

उपादान ।

छोड ध्यान अर धारना, पलटि योगकी रीति ।
कर्मजाल सब दूरकर, शिव प्रदीप शिव-प्रीति ॥३९॥

निमित्त ।

निमित हारिकै चल पडे, कछु नहिं चलो उपाय ।
उपादान शिवलोकमें, आप सहज बिलसाय ॥४०॥

सारांश ।

उपादान तब जीतकर, निज बल करो प्रकाश ।
शाश्वत् सुख निज सिद्धपद, अंत होय नहिं तास ४१
उपादान अर निमित बल, जगवासी सब माहिं ।
जो निज शक्ति संभार लें, सो जगवासी नाहिं ४२

यह महिमा है ब्रह्मकी कैसे वरनूं ताय ।
वचन अगोचर नित्य है, विरले समझै भाय ॥४३॥
उपादान अर निमितका, कथा कछू संवाद ।
समदृष्टीको सरल है, मूरखको बकवाद ॥ ४४ ॥
जानै जो गुण ब्रह्मके, जानै सो यह भेद ।
जिन आगम परमान लख, फिर मत कीज्यो खेद ४५
मलकापुरमें आयके, जिन-मंदिर कर बास ।
'नंद ब्रह्म' रचना करै, चित् चैतन्य विलास ॥४६॥
जेष्ठ शुक्ल द्वादश विषैं, रवीवार दिन मायँ ।
एकोन्नीस तिरासिमें, भई पूर्ण सुन भाय ॥ ४७ ॥

ज्ञान-छत्तीसी ।

दोहा ।

परमातम परनाम कर, गुरुको करडुं प्रणाम ।
वरनूं 'ज्ञान—छतीसि' को, कारण समकित ठाम॥१॥
वाणी श्रीअरहंतकी, शब्द ब्रह्म चित धार ।
गणधरने उपदेशियो, निहचै अर व्यवहार ॥ २ ॥
देहाश्रित व्यवहार है, आत्माश्रित है ज्ञान ।
निहचै मुख्य प्रमान कर, आत्मरूप चित आन॥३॥
धारावाही ज्ञान पद, लोकालोक विख्यात ।
अनुभव रूपी नित्य है, देखहु सम्यक् भ्रात ॥ ४ ॥

पद्धड़ी छंद ।

नव तत्व माहिं चैतन्य रूप, छिप रह्यौ अनादी एक-रूप । तातैं मिथ्या दृग ज्ञान भाय, भूले निज निधि अज्ञान मायँ ॥ ५ ॥ व्यवहार कहैं नव रूप जीव, यह अंध भाव संसार नींव । परयाय-दृष्टि जब अंत होय, तब चेतनके गुण प्रगट होंय ॥ ६ ॥ अज्ञानमयी जो अनादि भाव, परयाय ग्राहतैं बंध भाव । तातैंहि अवस्था कहि बखान, नव भेषरूप यह जीव जान ॥ ७ ॥ चेतन पुद्गल इक क्षेत्र माहिं, सो तो अनादि व्यवहार माहिं । इस कारणही पुद्गल सँयोग, बिन भेदज्ञान चेतन वियोग ॥ ८ ॥ नव तत्वहि होय अशुद्ध

भाव, इक चेतनहीको बंध नांव । तातैं यह मूल अज्ञान पाय, संसार बेल व्यवहार भाय ॥ ९ ॥ व्यवहार वचन ये सत्य नाहिं, निरबाध युक्ति कछु बनत नाहिं । तातैं निश्चय-नय है प्रधान, याकी युक्ती निरबाध जान ॥ १० ॥ चेतन लक्षणयुत चित् स्वरूप, ज्ञायकमय भाव बन्या अनूप । दैदीप्यमान चित् चमत्कार, नव तत्व माहिं यह निर्विकार ॥ ११ ॥ नव तत्व माहिं जगमग जो होय, चेतनकी दीप प्रकाश सोय । सर्वज्ञमयी गुणको निधान, तातैं गुणको नाँहि अंत जान ॥ १२ ॥ इक ज्ञायकमय देखो विख्यात, यामें नहिं कोऊ पक्षपात । परजै परजै चित् चमत्कार, ल्यायो अनुभव इक यही सार ॥ १३ ॥ नव भेद माहिं नहिं भेदरूप, यह निश्चयसे जिन कहो रूप । परयायदृष्टि है नाशवान, तातैं निश्चय-नय है प्रधान ॥ १४ ॥ सम्यक् स्वरूप अनुभव करंतु, फिर बद्धभाव ऊपर तरंतु । द्रव्यत्व भाव है नियम रूप, यह बद्ध अनित्य अनेक रूप ॥ १५ ॥ बहिरात्म बुद्धि परजाय ग्राह, अज्ञान कह्यो यह ग्रंथ माहिं । रागादि विभाव अनेक भाव, तामें इक ज्ञायक निज स्वभाव ॥ १६ ॥ यह बद्ध भाव पहिचान लेउ, फिर सहजहि आतम जान लेउ । सम्यक् स्वभाव जब प्रगट होय, नहिं बद्धाबद्ध विकल्प कोय ॥ १७ ॥ जड चेतन तो इक भाव नाहिं, देखो अनादि

निज निजहि माहिं। अज्ञान अनादिको मोह ठाम, इक-पनो ज्ञान यह मोह नाम ॥ १८ ॥ परमें इकता जब दूर होय, तब मोह मूलतैं नाश होय । जब ज्ञानपुंज चेतन स्वभाव, अपने आपहि तब देख दाव ॥ १९ ॥ यह भेदज्ञान महिमा अनूप, बन रहो अनादी एक रूप । उपयोग भाव उपयोग माहिं, उपयोग छोड कहुं रमण नाहिं ॥ २० ॥ सम्यक् त्रय भाव अभिन्न पेख, इक आतमके गुण है विशेख। सो व्यक्त रूप उपयोग जान, यदि नाम तीन तादि एक मान ॥ २१ ॥ चेतन स्वभाव इम ज्ञान रूप, चारित्र प्रकाश रहो अनूप । देखो समदृष्टी माहिं रूप, चेतन अद्भुत इक जगत भूप । सुनके श्रद्धा जो करत जीव, तिनमें अनुभवकी नाहिं नींव ॥ २३ ॥ उपयोग ज्ञान परिणमन नाम, परिणमन प्रतिक्षण होय जान। स्वय-पर दोनों उपयोग चाल, यह वस्तु भाव है तीन काल ॥ २४ ॥ परकी परिणतिमें परहि नाहिं, स्वयकी परणति तो द्रव्य माहिं । परभाव-दृष्टिहि अनेक भाय, परिणती ज्ञानकी ज्ञान थाय ॥ २५ ॥ बिन भेदज्ञान भूल्यो अनादि, परिणती खेलमें भ्रम अनादि। परिणती द्रव्यमें द्रव्य देख, संकर भावादिक त्याग पेख ॥ २६ ॥ देखो इक ज्ञान-स्वरूप गेह, यामैं है नाहिं अनादि नेह । अनुभव इक ज्ञायक पद लखाय, अनुभव नित सिद्ध स्वभाव धाय ॥ २७॥ ज्ञायक

चेतन सब भाव माहिं, ज्ञायक निजको निजरूप माहिं । ज्ञायक विकल्पको लेश नाहिं, ज्ञायक उद्योत स्वभाव माहिं ॥ २८ ॥ सम्यक् अनुभव जब दृष्टि होय, तब सम्यक् ज्योती जग विलोय । जगमें रहकर जगमाहिं नाहिं, यह अद्भुत गुण स्वय-ज्ञान माहिं ॥ २९ ॥ यह आतमज्ञान सबमें प्रधान, केवलपद-धारी मह महान । आतम जानैं बिन दीन होय, जगमें अनादि बहु भ्रमन होय ॥ ३० ॥ सम्यक् आतम निज स्वाद लेउ, जब सम्यक् आतम जान लेउ । परतक्ष आत्म गुण ज्ञानरूप, यामें नहिं भेद करो विरूप ॥ ३१ ॥ चित् रूप चिदातम चित् चकोर, गुणमें अनंत गुणकी मरोर । यद्यपि घट घटहि विराजमान, तोऊ घटसें निरलेप जान ॥ ३२ ॥ यह विकलपमें निरविकल रूप, देखो अपनेमें जगत् भूप । शाश्वत् अविनाशि अनादि वेद, आकार रहित भासै अभेद ॥ ३३ ॥ सब भेद छोड इक स्वाद लेउ, जैसे व्यंजनमें लवण सेउ । अद्भुत महिमा कछु कहि न जात, अनुभव महिमा जगमाहिं स्यात् ॥ ३४ ॥

दोहा ।

स्वातम रसही स्वादिए, मत भटको पर माहिं ।
अल्प समयमें सिद्धि है, कायक्लेश कछु नाहिं ॥३५॥
लिखी 'ज्ञान-छत्तीसिका', नंद ब्रह्म चित आन ।
नशियां चंपालालकी, ब्यावर नगर सुथान ॥ ३६ ॥

दीपमाल-छव्वीसी ।

दोहा ।

मंगलमय उद्योत हैं, तीनलोकके शीस ।
नमस्कार नितप्रति करौं, घट प्रकाश जगदीश ॥ १ ॥
ज्ञायक ज्योती जगमगै, देखो दृष्टि सँभार ।
दृष्टीमें जो दिसत है, होय आप परिहार ॥ २ ॥
धारावाही ज्ञान पद, विकशित रूप अपार ।
राग द्वेष क्रोधादि सब, भिन्न दिसत हैं आप ॥ ३ ॥
आत्म स्वभाव प्रकाशमय, चेतन गुणको खान ।
अन्यरूप तो होय नहिं, वोही अपनो थान ॥ ४ ॥
अपने थलको परखकैं, ग्रहण करो मतिमान ।
जनम मरणके रोगकी, करो औषधी पान ॥ ५ ॥
ज्ञानहि अमृत जगत्में, भरौ सर्व घट मायँ ।
ज्ञानामृतके पानतैं, जन्म रोग मिट जायँ ॥ ६ ॥
जन्म रोग है देहकों, ज्ञान अमर जग माहिं ।
ज्ञानमयी निज पद विषैं, अंध मरण दुख नाहिं ॥ ७ ॥
जाग जाग जगबासि जन, यह पद तुम पद नाहिं ।
तुमरो पद सर्वज्ञमय, जग दीसत जिस माहिं ॥ ८ ॥
तुम ज्ञायक तुम ज्ञानमय, तातैं हो जगदीश ।
जग भासत है तुम विषैं, तातैं कहुं जगदीश ॥ ९ ॥
देखनहारा एक तू, भाव अनेक प्रकार ।
एक अनेकहि है जदपि, तद्यपि एक प्रकार ॥ १० ॥

ज्ञान चेतना जीवकी, जड स्वभाव नहिं होय।
ता कारण सब भावमें, ज्ञायक चेतन सोय॥ ११॥
जड चेतन दो द्रव्य हैं, तीजो नाहीं कोय।
दो परिणामी द्रव्य हैं, तिस कारण भ्रम होय॥ १२॥
परिणामीके रहसका, भेद न पायो जीव।
यह अनादिकी भूलसे, अंध रहत जग जीव॥ १३॥
अपनो थलही परखिये, जाग्रत ज्योति सदीव।
ज्ञान स्व-पदमय घर विषैं, धरौ समाधी जीव॥ १४॥
भेदाभेदकि कल्पना, जहां न पावे थान।
भेदहि माहिं अभेद है, बोधमई गुणवान॥ १५॥
यदपि भेदमें रहत है, तदपि भेद नाहिं होय।
वस्तु भाव पलटे नहीं, क्यों अपनो पद खोय॥ १६॥
निरविकल्प तो बोधमय, विकल कर्म गति जान।
बोधशून्य विकलप रहै, बोध विभूति विज्ञान॥ १७॥
चरम भाव परसे नहीं, ज्ञाता ज्ञान गुमान।
धरै समाधी नित्य ही, ज्ञान ध्यान अमलान॥ १८॥
वचन सिद्ध जिस थानमें, सोही अनुभव चंद।
'दीपमालिका' प्रगट है, देख मूढ मतिमंद॥ १९॥
निरविकल्प तो द्रव्य है, ध्यान क्लेश कछु नाहिं।
जो कछु कहूं विकल्प है, वचनरूप सो नाहिं॥ २०॥
परमरूप परमातमा, नाम जिनागम माहिं।
सब उपमाको ग्रासके, देख भरौ जग माहिं॥ २१॥

उद्यममइ उद्योत है, करनीको भ्रम नाहिं ।
निज स्थानमें रहत है, देखनहारा माहिं ॥ २२ ॥
ध्यान धारना जोगमें, रहै तोय ज्यों तेल ।
अंधेको दीखै नहीं, जानै ज्ञाता खेल ॥ २३ ॥
सम्यक् कुलके तुम धनी, करनी तुममें नाहिं ।
तुमरो पद तुममें सदा, पर पद तुममें नाहिं ॥ २४ ॥
जागो अब निज पद विषैं, 'दीपमाल' चित आन ।
करनि अंधेरी रात है, हठ न गहो मतिमान ॥ २५ ॥
'नंद ब्रह्म' निज स्वाद चख, 'दीपमालिका' गायँ ।
पारोला-मंदिर विषैं, खानदेशके मायँ ॥ २६ ॥

अनुभव-पौर्णिमा—पंचवीसिका ।

दोहा ।

परमरूप परमातमा, आद्य अनादि अनूप ।
अनुभवरूप उद्योत जिन, नमुं सम्यक् त्रय रूप ॥१॥
मोक्षस्वरूपी मोक्षमय, केवलबोध निधान ।
सर्वभूत सर्वज्ञ मय, नमो नमो सुध आन ॥ २ ॥

चौपाई (१५ मात्रा) ।

ज्ञान स्वभावी आतम राम, निर्मल ज्ञान देह गुण धाम । शील सिरोमन जगदाधीश, देखो तीनलोक-पति-ईश ॥ ३ ॥ देह-रहित है देही मायँ, कर्म-बंध-नहिं अनुभव मायँ । कौन करै अर कर्त्ता कौन, साम्य भावमें सबही गौन ॥ ४ ॥ अनुभव-दृष्टी अतिहि उदार, जाको गुण है अपरंपार । अनुभवमई बन्यो निज रूप, देखो अनुभव माहिं स्वरूप ॥ ५ ॥ अनुभव दीप्त आपही आप, अनुभव स्वयमें स्वयको थाप । अनुभव छोड कहूं मत जाव, अनुभवमें अनुभवही भाव ॥ ६ ॥ अनुभव माहिं कोउ नहिं भेद, अनुभव ज्ञान एकही वेद । अनुभव कणिका शिवमें थाय, अनुभवमें शिवरूप समाय ॥ ७ ॥ अनुभव आत्मस्वरूपी देव, सिद्ध निरंजन शाश्वत् सेव । अनुभवही अमृत जगमाहिं, अनुभव अमरपुरी निज-

माहिं ॥ ८ ॥ अनुभव ज्ञायक अनुभव ज्ञान, अनुभव आप आपमय जान। अनुभव मोक्षरूप स्वयमेव, अनुभव सिद्धस्वरूपी देव ॥९॥ अनुभव चरण सत्य चारित्र, परको त्याग नियम स्वयक्षेत्र। अनुभव दीप्त जगत् विलसंत, अनुभव ज्योति महा बलवंत ॥ १० ॥ अनुभव दोय रूप जिन कही, एक लब्धि इक उपयुग सही। लब्धिरूप अनुभव है नित्त, देख स्वभाव माहिं हो मित्त! ॥ ११ ॥ लब्धिरूप सामान्य स्वरूप, उपयुग माहिं विशेष स्वरूप। गर्भित अनुभवमें सब होय, कथन भेद दीखै नहिं कोय ॥ १२ ॥ तातैं अनुभव केवलरूप, अनुभव ज्योति एक चिद्रूप। अनुभव सदा नित्य उद्योत, भाव लहरमें एकहि ज्योत ॥ १३ ॥ अनुभव आतम एकहि ठाम, अनुभवको कोई नहिं नाम। अनुभव अतिहि निकट परतक्ष, कहा कहूं जानै सोइ दक्ष ॥ १४ ॥ कर्म लेप तोऊ अति स्वच्छ, देखो आतम गुणके पक्ष। आतमज्ञान आत्ममइ भाव, बाकी सबही देख विभाव ॥ १५ ॥ जगत् दिवाकर केवलरूप, अनुभव माहिं चेत चिद्रूप। अनुभव कथा कही नहिं जाय, जो कछु कहुं अनुभवहि लखाय ॥१६॥ अनुभव ज्ञानमूर्ति भगवान्, हैं अनादि अविनाशी मान। नित्य उदय है नित्यानंद, बोध स्वरूप स्वभावी चंद ॥ १७ ॥ चिंता रहित अचिंत्य स्वरूप, शून्य

नाहिं चित् चेतनरूप । एक अनेक कहूं किम ताय' बात न आवै मनहि समाय ॥ १८ ॥ शब्दातीत रहै जगमाहिं, याको भेद गुरू बिन नाहिं । पोथी बाँचत पोथी माहिं, अनुभव कथा कथनमें नाहिं ॥ १९ ॥ अनुभव ज्ञानगम्य निज रूप, चित् चैतन्य सदा शिवरूप । अनुभव वीतराग है मूल, अनुभवतैं पंचम गति कूल ॥ २० ॥ अनुभव योग माहिं नहिं योग, अनुभव बिना अकारथ योग । तीन कालमें काल अतीत, विषय भोगमें विषयातीत ॥ २१ ॥ महा उदार शांत गुणवान, बोधसमाधि स्वरूप विज्ञान । चेतनवंशी चेतनरूप, चेतन अंक बन्यो निज रूप ॥ २२ ॥ ज्ञानपुंजमय आतम ज्योत, अनुभवरूप स्वयं उद्योत । देखै ताय देख अब लेउ, हितकी कथा जान उर ठेउ ॥ २३ ॥

दोहा ।

अनुभव कथा विचारकैं, धरौ चित्त बुधवान ।
नंद ब्रह्म रचते हुए, देख स्व-पर कल्यान ॥ २४ ॥
'अनुभव-पौरणिमा' कही, पच्चिस छंद बनाय ।
चित प्रमाद बश भूल जो, करो शुद्ध बुध ताय २५

सिद्ध-पच्चीसी ।

दोहा ।

सिद्धातम चिद्रूप नित, विकशित ज्ञान प्रमान ।
वंदों इस घटलोकमें, अनुपम सिद्ध महान ॥ १ ॥
तीनलोक जड़ द्रव्य है, ज्ञानलोक यह नाहिं ।
ज्ञानलोक तो सिद्ध है, सिद्धलोकके माहिं ॥ २ ॥
जहाँ सिद्धकी साध्य है, सोही सिद्ध अनूप ।
सिद्ध कहां अब दूसरो, सिद्धमई चिद्रूप ॥ ३ ॥
सिद्धज्ञानमय आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ।
ज्ञान सिद्ध अर आतमा, एक नाम उर धार ॥ ४ ॥
सिद्धक्षेत्रही सिद्ध है, तीन काल परमान ।
ज्ञानलोकके उदरमें, भाम रहो जग जान ॥ ५ ॥
तीनलोक मत लोकिये, लोकत हैं सो लोक ।
ज्ञानलोक ही सिद्ध है, सिद्ध करै निज लोक ॥ ६ ॥
नव पदार्थ द्रव्यादि सब, कहे जिनागम माहिं ।
अनुभव नित उद्योत है, ज्ञानलोकके माहिं ॥ ७ ॥
ज्ञानलोक सर्वज्ञमय, सर्वदर्शि भगवान् ।
सिद्धशिलाकी कल्पना, कहीं न पावै थान ॥ ८ ॥
ज्ञानलोक शिवलोक अरु, ब्रह्मलोक है नाम ।
नामदृष्टिके भेदसे, बुद्धि न पावै ठाम ॥ ९ ॥
ज्ञान सिद्धमय जगत्में, ज्ञान सिद्ध भगवान् ।
ज्ञानवान भगवानको, ढूंढ़ ढूंढ़ हैरान ॥ १० ॥

दृष्टी बँधी अनादिकी, ता कारण जब जीव ।
जा कारजको करत है, उलटो होय सदीव ॥ ११ ॥
स्त्री पुत्रनको त्यागके, त्यागीको अभिमान ।
नग्न होय मुनिव्रत धरै, सर्व अकारथ जान ॥ १२ ॥
अहंकार जो मोक्षको, सो तो है घटमांहिं ।
कारण है संसारको, सो तो दीखै नाहिं ॥ १३ ॥
कारणके संबंधतैं, कारण होय सदीव ।
भ्रम-मदिराके पानतैं, अंधा है जग जीव ॥ १४ ॥
फिर फिर फिरकी खायके, कहैं गुरूके पास ।
जनम मरन दुख मेटके, करो मोक्षमें वास ॥ १५ ॥
गुरू कहत हैं शिष्यसों, सुनो वत्स मन ल्याय ।
स्त्री कुटुंबको त्यागके, धरो महाव्रत आय ॥ १६ ॥
जगवासीकी दौड़की, हद भई इम जान ।
ता कारण जग-वाससौं, जगवासी है नाम ॥ १७ ॥
काललब्धिके योगतैं, ज्ञानलब्धि जब होय ।
ज्ञानचेतना जगमगै, अनुभव सम्यक् होय ॥ १८ ॥
सम्यक् अनुभव होत ही, गयो जगत्को वास ।
ज्ञानलोककी-प्राप्तितैं, सिद्धलोकमें वास ॥ १९ ॥
ज्ञानरूप आतम धनी, सिद्धरूप विख्यात ।
रात अंधेरीमें पडो, परै कछू नहिं हाथ ॥ २० ॥
कारणतैं कारज सधै, देख जिनागम भ्रात ।
ज्ञानहि कारण मोक्षको, क्रिया कर्मकी जात ॥ २१ ॥

मोक्षहेतु किरिया करैं, तदपि लहै संसार ।
क्रिया जगत्की नींव है, देखो दृष्टि सँभार ॥ २२ ॥
क्रिया करमकी दौड़ है, होय कर्म बिन नाहिं ।
सो तो आश्रित देहसों, देह मोक्षमें नाहिं ॥ २३ ॥
सिद्धस्वरूपी देव जिन, है चेतन विख्यात ।
समल विमल इस भेदमें, देखो चेतन जात ॥ २४ ॥
देवल देह प्रमान कर, देख चेतना अंश ।
सिद्ध आपही सिद्ध है, स्वाद लेउ जिमि हंस ॥ २५ ॥
लिखी सिद्ध-पचीसिका, जिनवाणी परमान ।
नंद ब्रह्म गावैं सदा, सुनो भविक चित आन ॥ २६ ॥

सुबोध-एकादशी ।

कुंडलिया छंद ।

व्यक्तरूप परमात्मा ।

द्रव्यास्रवतैं भिन्न है, भावास्रवतैं पार ।
व्यक्तरूप परमातमा, नमो चेतनासार ॥
नमो चेतनासार, आप निज पर परकाशे ।
विकलपको नहिं लेश, चेत निरविकलप भासै ॥
रहे योगसे पार, योगमें मत भरमावै ।
देख सिद्धमय थान, आपको आप लखावै ॥ १ ॥

जैसी दृष्टि वैसी गति ।

ज्ञान-नेत्रही सिद्ध है, चर्म नेत्र संसार ।
जैसी जाकी दृष्टि है, तैसो ताको द्वार ॥
तैसो ताको द्वार, पाय निज निज घर जावै ।
एक रहै संसार, एक शिवरूप कहावै ॥
यह अचरजकी बात, जान जगवासी भैया ।
क्यों भरमावै आप, आप शिवखेत बसैया ॥ २ ॥

जिनमूरतिमें स्वरूपता ।

जिनमूरति निज नाम है, परमूरति पर नाम ।
दृष्टि खोल अब देखलो, छूट जाय दुख धाम ॥
छूट जाय दुख धाम, आपतैं आप दिखावै ।
पर संबंध पलाय, एकता दूर भगावै ॥

जागै ज्योति अनंत, अटल सुख ज्ञायक रसमें ।
होय शुद्ध उपयोग, जान इम एकहि पलमें ॥ ३ ॥

परकी मुख्यतासे ही अज्ञान ।

पाप पुण्य दो पक्ष हैं, कृष्ण शुक्ल सम जान ।
त्यों ही ज्ञान अज्ञान हैं, परहि मुख्यता मान ॥
परहि मुख्यता मान, भई अज्ञान कुबुद्धी ।
ता कारण जगजीव, जान इम जगकी वृद्धी ॥
अब निजको निज जान, खोल जग-ग्रंथी[1] भाई ।
दोनों पक्ष अतीत, सहज अविचल ठकुराई ॥ ४ ॥

दुरमतीकी भावना ।

ज्ञानशून्य किरिया करे, मोक्ष आश चित राख ।
परंपरा शिव होत है, यह दुर्मतिकी भाख ॥
यह दुर्मतिकी भाख, जगत्में घर घर फैली ।
भरम रहो जगजीव, खोय निज गुणकी थैली ॥
यह अनादिकी भूल, मेट शिवपद दरसावैं ।
गुरु बिन नाहिं उपाय, जान हम निश्चय गावैं ॥५॥

भेदज्ञानकी अवधि ।

उपादेय जबलों कहो, परम भेदविज्ञान ।
निज गुण निज जानो नहीं, जबलग पावै थान ॥
जबलग पावै थान, भरमकी डोर न तोड़ी ।
भयो प्रगट निजदेव, तहाँ नहिं भ्रमकी घोड़ी ॥

---

१ गाँठ ।

निजसुख निजपरकाश, माहिं है दरव विलासा।
ज्यों सागरमें नीर, देख इक पूरन बासा॥ ६॥

भेदभावका परिहार।

एकरूप आतम दरब, कहे तीन व्यवहार।
तदपि एकरस स्वादिए, सहज होय भवपार॥
सहज होय भवपार, देख आतम गुण भाई।
रहे कर्मके साथ, तदपि नहिं कर्मन काई॥
आतम गुणमें राच, राच अनुभौ प्रगटावै।
बंध मोक्षसे रहित, ज्ञान ज्ञायक दरसावे॥ ७॥

घटातीत घटमाहिं।

जिनके घट प्रगटी छबी, घटाकारमय भास।
घटके गुण घटमें सदा, होय नित्य परकाश॥
होय नित्य परकाश, आप निजशक्ति सँभारी।
गयो आस घट बास, ज्ञान गुणकी बलिहारी॥
तीन काल इकरूप, पाय निज गुणकी महिमा।
जगी समाधी आप, देख निज सम्यक् प्रतिमा॥८॥

देह क्रियाके पार।

ज्ञान-कला घट घट प्रगट, देह क्रियाके पार।
मरयी बिन जावै नहीं, चेतनरूप अपार॥
चेतनरूप अपार, पार नहिं मूरख पावै।
इस कारण जगमाहिं, आप आपहि भरमावै॥

सम्यक्वंत स्वभाव, शाश्वत पद निज पायो ।
गयो जगत्को वास, आप निज सिद्ध कहायो ॥९॥

मिथ्या प्रलाप ।

बहुविध क्रिया-कलापतें, मिलौ न आतमस्वाद ।
आशाके वश होय कर, करें जगत्में वाद ॥
करें जगत्में वाद, आपकी आप सुनावैं ।
क्रिया मोक्षको मूल, जान, कह जग भरमावैं ॥
जगो न सम्यक् भाव, करत मिथ्या चतुराई ।
निश्चय नय परमान, जान अब चेतो भाई ॥ १० ॥

देहालयमें देव ।

देह दिवालय देव है, देखो आप विचार ।
सोऽहँ सोऽहँ शब्दमें, आपरूप अविकार ॥
आपरूप अविकार, पाय अविचल पद पावै ।
सिद्धरूप निज नाम, जान क्यों जगमें आवै ॥
धरणगांवमें आय नंद, भविजनहित भाषी ।
बारस वदि वैशाख, एक-उन्नीस तिरासी ॥ ११ ॥

दशलक्षण ।

दोहा ।

चिदानंद पद सुमरिकें, चिदानंदके मायँ ।
गावों दशलक्षण अबै, गुरुपद शीस नमाय ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

उत्तम क्षमा ।

उत्तम-क्षमा सुनो चित धार, संसै चित नहिं महा उदार । आत्म-स्वभाव धरै निजमाहिं, उदय करममें टलमल नाहिं ॥ २ ॥ आप स्वभाव माहिं नहिं भीत, लोक माहिं रहि लोकातीत । प्रगट होय जब आत्म-स्वभाव, उत्तम क्षमा स्वभावी भाव ॥ ३ ॥

उत्तम मार्दव ।

मार्दव-धर्म जान हितकार, दयामयी चित चेतन सार । घट घट देख एक आकार, दया जगै तब अपरंपार ॥ ४ ॥ तीन कालमें एकहि रूप, ज्ञायकमय है विश्वस्वरूप । कोमल गुण परकाशै सर्व, मार्दव आप देख नहिं गर्व ॥ ५ ॥

उत्तम आर्जव ।

आर्जव-धर्म कहूं अब तोय, मन वच काय परै है सोय । सहज सरल गुण नित्य विकास, छल कपटादिक नाहीं जास ॥ ६ ॥ सिद्धरूप निजरूप लखाय,

छल कपटी मिथ्यामति भाय । जा घट प्रगट होय निजधर्म, आर्जव जगै मिटावै भर्म ॥ ७ ॥

उत्तम सत्य ।

सत्य-धर्म पालै जो चित्तै, सत्य भाव प्रगटावै नित्त। पुद्गल गुण पुद्गल उपजाय, विनशत है छिन छिनके माय ॥ ८ ॥ आपा देख गहै निजरूप, शाश्वत् ज्योति चेतनारूप । आत्म स्वभाव ज्ञानगुणसार, चेत सत्य तब होवै पार ॥ ९ ॥

उत्तम शौच ।

अब सुन शौच-धर्म सुखदाय, ज्ञान सलिल बिन नाहिं उपाय। काल अनंत फिरै जगमाहिं, स्वात्मज्ञान बिन सूझै नाहिं ॥ १० ॥ जब विवेक घट प्रगटित होय, स्वच्छ विकाशी चेतन सोय । ज्ञान सलिलतें मिथ्या जाय, तब ही शौच आप दरसाय ॥ ११ ॥

उत्तम संयम ।

संयम गुण अब कहों बखान, स्वपर ज्ञान पहिली सोपान। षट् कायोंकी दया जगाय, जब अपने सम जानो जाय ॥ १२ ॥ भेदज्ञान शक्ती बल पाय, तब चेतन गुण आप लखाय । चित-संयम काटै भवताप, देख संयमी आपहि आप ॥ १३ ॥

---

१ चित्तसे ।

उत्तम तप ।

अब तप गुणको सुन विरसंत, जानै बिन होवे नहिं संत । पंचेन्द्रियको विषय विकार, औदायिक सब क्रिया विचार ॥ १४ ॥ देखो सहो विविध है कर्म, निज कृत मान करो मत भर्म । निज घर बैठ आउ नहिं ताप, इम तपकर तब छूटै पाप ॥ १५ ॥

उत्तम त्याग ।

त्याग-धर्म जगमें विख्यात, त्याग देहु जग छिनमें भ्रात । सिद्ध समान स्वरूप विचार, सिद्ध शुद्ध देखो अगकार ॥ १६ ॥ जगत् माहिं हैं जगतातीत, देख आप गुण धार प्रतीत । जग जड़ देहाश्रित नित जान, त्याग-भरम तजि त्यागी मान ॥ १७ ॥

उत्तम आर्किचन्य ।

आर्किचन्य-धर्म यह जान, इच्छा बिन तप करे महान । आतमज्ञान स्वगुण उर धार, इच्छा विकलप पर पद टार ॥ १८ ॥ जगै सुभाव देख बिलसंत, सब जड़ है चेतन पद संत । आशा जाय देख निज रूप, आर्किचन्य जगै शिवरूप ॥ १९ ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य ।

ब्रह्मचर्य सबमें परधान, जा घट प्रगटै ब्रह्म सु-जान । विषय विकार देहको अंग, इच्छा रहे मूढ़मति

संग ॥ २० ॥ जगै ज्ञान तत्त्व इच्छा आय, विषय विकार भगै छिनमाय । रागद्वेष परसे नहिं कोय, ब्रह्मरूप निज रूप विलोय ॥ २१ ॥

दोहा ।

दशलक्षण गुण जानके, धरै चित्त बुधवान ।
मिथ्यामति सम्यक् लहै, फटिक स्वच्छ पाषाण॥२२॥
शुक्लपक्ष आषाढ़की, अष्टमि दिन गुरु जान ।
एकोनबिस वेदासिमें नंद, लिखी चित आन ॥ २३ ॥

षोडश-कारण ।

दोहा ।

मंगलमय सर्वज्ञ पद, ज्ञायक रस भगवंत ।
तीन लोकपति निरखि नित, बंदों सिद्ध महंत ॥१॥

सवैया (३१ मात्रा) ।

१ दर्शन विशुद्धि ।

दर्शविशुद्धि जान सुविचारा, सुरुचि बेल आतम मुख धाय । मोक्षस्वरूप भाव परसनको, लगन लगी आतम गुण माय ॥ मिथ्यादर्शन मिथ्यादृष्टी, ग्रंथीभेद भेद नहिं पाय । स्वातम बलतैं ग्रंथिभेद जब, दर्श-विशुद्धि शुद्ध कहलाय ॥ २ ॥

२ विनयसंपन्नता ।

सम्यग्ज्ञानी विनय स्वभावी, विनय भाव वरतैं जगमायँ । साधन करै मोक्षमय धनको, कारण कार्य शुद्ध गुणमायँ ॥ तीन कालकी द्रव्य-व्यवस्था, विन सम्यक् विनयी न कहाय । निजस्वरूप लखि विनयी जगमें, सिद्धरूप भेदै नहिं ताय ॥ ३ ॥

३ शीलव्रतेश्वनतीचार ।

शील स्वभावी निजगुण जानै, अर पर गुणको भेद लखाय । स्वात्म-भावरस स्वादहि स्वादै, जगी अहिंसा स्वय परमाय ॥ निजगुण निश्चित मायँ व्रती है, अणूमात्र

पर गुण नहिं भाय । राग द्वेष क्रोधादिक गुणको, शील स्वभाव प्रकाश कराय ॥ ४ ॥

४ अभीक्षणज्ञानोपयोग ।

जीवादिक नव तत्त्व कहे जे, धरी अवस्था जीवहि आय । भई अवस्था जा कारणतें, सो कारण मिथ्या-मति माय ॥ सम्यक् अनुभव रहित अवस्था, जगी ज्योति निज निज गुणमाय । उपयुग नहीं औरको स्वामी, तीन कालकी चाल बताय ॥ ५ ॥

५ संवेग ।

जीव कर्म संबंध अनादी, कर्मभाव गति कर्म चलाय । मैं चेतन वो जड़ पुद्गल है, भूल भूल पुद्गल लपटाय ॥ पुण्य पाप दोऊ पर काले, देख थिती अज्ञानी माय । ज्ञाता बिन संवेग प्रगट नांहिं, संवेगी संवेग लखाय ॥ ६ ॥

६ शक्तिस्त्याग ।

बिन शक्ती कछु त्याग होय नहिं, जान शक्ति फिर त्याग कहाय । निजगुण परगुण भेदज्ञान बिन, मूरख क्यों त्यागी कहलाय ॥ निज शक्ती बल देख जगतमें, प्रगट सदा नित अधिक लखाय । जिस शक्ती तिस साथ रहे नित, जान त्याग माखे जिनराय ॥ ७ ॥

७ शक्तिस्तप ।

काय क्लेश तप शक्ति रूपकर, बिनशक्ती तप नहिं

कहलाय । सूक्षम ज्ञान स्वभाव ज्ञान बिन, कायक्लेश तप बंध बढ़ाय ॥ आत्मशक्ति चैतन्यस्वरूपी, पुरुषरूप नित पुरुषाकार । पुरुषारथकर पुरुष आप लख, शक्तिस्तप तब जगै अपार ॥ ८ ॥

८ साधुसमाधि ।

साधू आपन गुण नहिं त्यागै, सदा स्वरूप ज्ञान विज्ञान । विकलप नहीं ग्रहण जड़ गुणको, क्या खूबी साधूकी जान ॥ सहज समाधी भई जागृति, समता कुलदीपक बलवान । निराहार निरवसन दिगंबर, चेत देख साधू फिर मान ॥ ९ ॥

९ वैयावृत्य ।

आगम श्रद्धा धरो चित्तमें, नय दोऊ चालै निज चाल । सूक्षम भाव देख नित निजबल, सम्यक्रूप ग्रहो गुणमाल ॥ वैयावृत्य होय तिस घटमें, जो जानें निज परकी चाल । मन-वच-काय योग उपयुगकी, जातिभेद परखो सम काल ॥ १० ॥

१० अर्हत्भक्ति ।

अर्हत् पदके धारी मुनिवर, वे मुनि नहिं मुनिपदको ध्यावैं । कर्म रहित निज सिद्धरूप लख, ज्ञान अग्नि जागी तनमायैं ॥ जरै कर्म सब आप आपतैं, उपादान जिस तिसही माय । दो द्रव्यनकी क्रिया एक नहिं, देख भजो अर्हत् गुण भाव ॥ ११ ॥

११ आचार्यभक्ति।

स्वात्मशक्ती जा घट प्रगटी, द्वादशांगको रहस लखाय। नितप्रति स्वादै इक आत्मरस, एकमेक जिस गुण तिस माय॥ वचनवर्गणा मनोवर्गणा, ध्यानादिकमें नहिं भरमाय। आचारज अंतरपरमातम, देह भिन्न आचरण बताय॥ १२॥

१२ बहुश्रुतभक्ति।

श्रुतभक्ती नित करो विचारो, श्रुतहि बतावै श्रुतके पार। शब्दवर्गणा खिरै अनादी, चेतन गुण चेतनके लार॥ षट द्रव्योंकी सत्ता न्यारी, व्यापक व्याप्य निजहि आधार। ज्ञेय रु ज्ञायक भेद मेटि जब, है श्रुतभक्ती निज दरबार॥ १३॥

१३ प्रवचनभक्ति।

प्रवचन सुनो धरो चित माहीं, वाचक वाच्य देख सुविचार। उपादान चैतन्य विकाशी, निमित्त सदा जड़ गुणके लार॥ शब्दातीत रहै चेतनगुण, शब्द निमित तदपि बलवान। ज्ञानचेतना प्रगट होत ही, प्रवचनभक्ति होय अमलान॥ १४॥

१४ आवश्यकपरिहाणि।

हेयोपादय जब घट प्रगटै, समझै तब निजरूप त्रिकाल। गहै आप पद आप परखकैं, शुद्ध सिद्ध सम रूप

विशाल ।। विकलप नाहीं सदा अचल है, भावक भाव्य पहिन गुणमाल । क्या त्यागै क्या ग्रहे विकल नहिं, थिर स्वभाव समता चिरकाल ।। १५ ।।

१५ मार्गप्रभावना ।

साधन मार्ग जान रत्नत्रय, तीन नामको एक दिखाय । दर्शन-ज्ञान एक एकहिको, चारित आप अखंड बताय ।। शब्दमात्र गहि मारग भूलै, अनुभव ज्ञायक रस बरसाय । रसिक होउ जब ज्ञायक रसमें, तब सुमार्ग निज बल बतलाय ।। १६ ।।

१६ प्रवचनवत्सलता ।

काल अनादी भ्रमै मूढ़ है, देव निजातम भेद न पाय । देह लिंगको देव मानकर, देव शास्त्र गुरु नहीं लखाय ।। देही देवल माहिं बिराजै, अंतर बाहिर प्रगट बताय । प्रवचनवत्सल होय जान जब, लखो स्वरूप अंत नहिं ताय ।। १७ ।।

मदावलिप्तकपोल २४ मात्रा ।

धरणगांवमें नंद आदिप्रभु मंदिर माईं ।
'योगसार सिद्धांत' पढ़ै, मन अतिहि सुहाई ।।
जगै सहज स्वय-भाव, आप निज-निज रस छाई ।
'षोडशकारण' कही, 'वीर' पद शीस नवाई ।।१८।।

दोहा।

सूक्षमदर्शी सुजन हो, पढ़ो हर्ष चित आन ।
भूल होय सो शुद्ध कर, ग्रहो गुणी गुणवान ॥१९॥
नहिं जानूं व्याकर्ण मैं, नहीं शास्त्र अभ्यास ।
गुरु प्रसाद सुलटत घनी, चित चैतन्यविलास ॥२०॥
माद्र शुक्ल सप्तमि दिना, शनीवार परमान।
संवत् एकुनीस सौ, और तिरासी जान ॥ २१ ॥

परमार्थ-अक्षर-अड़तीसी ।

दोहा ।

मंगलमय उद्योत लख, जिनगुण अपरंपार ।
ब्रह्मरूप ब्रह्मांडमय, वंदों नितप्रति सार ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

कक्का—कहै सुनो बुधवान । कर्म साथ तेरो नहिं काम । कर्म देह जुत नित्य अचेत । कर्म क्रिया जडकी सुन चेत ॥ २ ॥

खख्खा—कहै विचारो आप । खबर करौ निज गुणकी बाप । लक्षणसे लक्षण कर भ्रात । क्यों परमें भूल्यो भटकात ॥ ३ ॥

गग्गा—बोलै सुनो पुरान । गगनह्विवत् चेतन परमान । रूपादिक जड गुण नाहिं लेश । तन वचनादिक नाहिं प्रवेश ॥ ४ ॥

घघ्घा—घटा देख चहुं ओर । घन कर्मादिक पुद्गल सोर । घटामाहिं नहिं चेतन जोत । तातैं चेतन आप उदोत ॥ ५ ॥

नन्ना—नयन चेत चित आन । नयनमई ज्ञायक गुणवान । स्वय-पर दोनों चाल अपार । देख सदा निज निज आधार ॥ ६ ॥

चचा–चंचल मन अकुलाय । चखो नहीं निज स्वाद् अघाय । योग धारना श्रवण अभ्यास । लखै नहीं मृग सम निज बास ॥ ७ ॥

छछछा–छान छान चित आन। आपन गुण निर्मल कर ध्यान । मोह रहित निर्मोह स्वरूप । गागर माहिं भऱ्यो जिम तूप ॥ ८ ॥

जज्जा–जतन करै मन ल्याय । जड चेतनको भिन्न बताय । चेतन भाव स्वभावी रंग । नहीं छिपो है परके संग ॥ ९ ॥

झज्झा–झटपट खोलो आंख । ज्ञायकमय चेतन जिन भाख । रागद्वेष क्रोधादिक भाव । पुद्गल भावक भाव्य स्वभाव ॥ १० ॥

नन्ना–आप निरंजन मान । नहिं व्योपार विषयको जान । भऱ्यो सदा निर्मल जल पूर । ज्ञान-समुद्र ज्ञान गुण सूर ॥ ११ ॥

टट्टा–टारै परकी टेक । निश्चित करै ज्ञान गुण एक । हलन चलन नहिं मेरो जाल । जनम रहित नहिं मेरो काल ॥ १२ ॥

ठठ्ठा–ठाकुर ठाम विचार । दर्शन ज्ञान स्वरूप चितार । षट् द्रव्यनको जाल अपार । विरले समझै समझनहार ॥ १३ ॥

डड्डा-डगमग थिर नहिं होय । खबर नहीं निज गुणकी तोय । विषय मोह जुत मलिन लखाय । नाहिं चेतन गुण क्यों भरमाय ॥ १४ ॥

ढढ्ढा-ढोल बजावै गाल । सोध करौ नहिं है बेहाल । थित पूरी कर खिर खिर जाय । पर फांसी निज गले लगाय ॥ १५ ॥

दोहा ।

नन्ना-नयन झरोकमें, ज्ञायक चेतन राय ।
नयन चेतना एक है, पांचों इंद्रिय माय ॥ १६ ॥

चौपाई ।

तत्ता-कहै तत्त्वकी बात । देख तत्त्व नौ हैं विख्यात । तामें सोध चेतना सार । नाम भेद पर सँगके पार ॥ १७ ॥

थथ्था-थिरगुण सहज लखाय । मोह मूलतैं स्वयं पलाय । जाने माने वेदक वेद्य । अनुभव कथा स्वयं संवेद्य ॥ १८ ॥

दद्दा-कहै दीन मत होय । देख भूल है तुझको तोय । मरकट मूठ बांध बिललाय । पकड लियो अब नाहिं उपाय ॥ १९ ॥

धध्धा-ध्यान धारना मायँ । भेदज्ञान बिन दीखै नायँ । शुक्लज्ञान बल देखो रूप । जब प्रगटै निज मोक्ष-स्वरूप ॥ २० ॥

नन्ना—नय दोऊ परमान । एक अंध इक जागृत जान । अंध अनादि भाय व्यवहार । सुमति जगै निश्चयके पार ॥ २१ ॥

पप्पा—कहै परख निज रूप । परम औषधी अमृतरूप । पारस परसै सुवरण होय । पारस नहीं दूसरो कोय ॥ २२ ॥

फफ्फा—फल लागै फल जाय । पुन्य पापको स्वाद दिखाय । चेतन नित्य अनंत स्वरूप । तद्यपि देख एकही रूप ॥ २३ ॥

बब्बा—बोलै वचन रसाल । धर विवेक मेटो जग-जाल । तीक्षण ज्ञान सुबुधि हथियार । कर्म कटै छिनमें दुखकार ॥ २४ ॥

भभ्भा—भाव सुभावी भाय । भवजल भँवर सहज मिट जाय । लोकातीत सिद्ध भगवान् । सहज भाव जानैं परमान ॥ २५ ॥

मम्मा—मान गुरूकी आन । गुरु बिन नाहीं है कल्यान । गुरू दिखावै अलख अपार । लखै आप अपने आधार ॥ २६ ॥

जज्जा—कहै जीवकी बात । जीवै सदा जीवकी जात । अचरज यही नित्य शिवरूप । जानैं नहिं विषयी इम रूप ॥ २७ ॥

रर्रा–राम राम जग गाय । मरमी बिन समुझै कछु नाय । रसिकप्रिया रसिकहि संग प्रीत । जग अरसिक सम जानो मीत[1] ॥ २८ ॥

लल्ला–लगी लगन लख रूप । लख लख ज्ञायक मोक्ष स्वरूप । आपन कला आप उद्योत । सहज समाधी अनुभव ज्योत ॥ २९ ॥

सोरठा ।

वव्वा–कहै विचार, चित् शक्ती चैतन्य है ।
वानी शुद्ध निहार, ज्यों जलमें कल्लोल है ॥ ३० ॥

दोहा ।

शश्शा–शांत स्वभावसे, शांत चित्त कर ज्ञान ।
संत शांत निज गुण विषैं, मगनरूप विज्ञान ॥३१॥
खख्खा–खोजै जतनसों, लक्षहि लक्ष सँभार ।
खूबी घटकी है यही, चट्ट दिखै अधिकार ॥ ३२ ॥
सस्सा–सत्य त्रिकाल है, सत् सचा अमलान ।
भेदभावको अंश नहिं, चंद्रकला वत् जान ॥ ३३ ॥
हह्ह्हा–हंसा देखिये, हंसा इत उत नायँ ।
हंसाको ढूंढत फिरै, हंसाके गुण मायँ ॥ ३४ ॥
क्षक्ष्क्षा–क्षण क्षण जानिये, जानैं सो क्षण नाय ।
एक ज्ञानके ज्ञान बिन, क्षणिक ज्ञान कहलाय ॥३५॥

---

१ मित्र ।

सवैया ३१ मात्रा ।

खानदेशमें धरणगांव है, तहँ जिनमंदिर बन्यो विशाल । आय रहे हम तिस मंदिरमें, जैनी जन सब हुए खुशाल ॥ 'चतुर्मास'को समय देखकर, बायाँ सब मिल करैं विचार । महाराजकी करूं व्यवस्था, नहिं जाने देंगी निरधार ॥ ३६ ॥ जानेकी जब सुनी हमारी, शोकातुर है आईं पास । धोंडूसाजी, बनाबाइ, अरु, रामकोर, शेवंती, खास ॥ झुमुकाबाई, आदि सुजन मिल, रखा मुझे आनंद अपार । तीन काल ही शास्त्र पढें हम, नरनारी शोभा सुखकार ॥ ३७ ॥ श्रीगुरु 'वीर' चरण सुमरन कर, नंद ब्रह्मने लिखी सँभार । परमारथ-अक्षर-अडतीसी, पढौ सुनौ अनुभव चित धार ॥ गुणीजनो! गुणग्राही होकर, अनुभव ले सब करो प्रचार । शुक्रवार श्रावण सुदि चौदश, एकुन्नीस तिरासी धार ॥ ३८ ॥